जैनधर्म की कहानियाँ

भाग 10

अखिल भा. जैन युवा फैडरेशन-खैरागढ़

श्री कहान स्मृति प्रकाशन-सोनगढ़

श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला संक्षिप्त परिचय

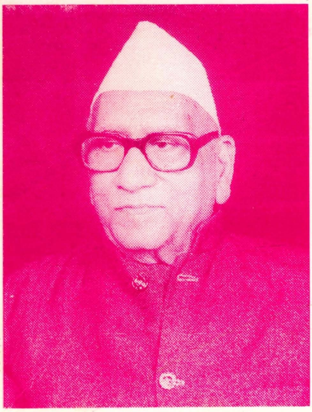

श्री खेमराज गिड़िया

श्रीमती धुड़ीबाई गिड़िया

जिनके विशेष आशीर्वाद व सहयोग से ग्रन्थमाला की स्थापना हुई तथा जिसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष धार्मिक साहित्य प्रकाशित करने का कार्यक्रम सुचारु रूप से चल रहा है, ऐसी इस ग्रन्थमाला के संस्थापक श्री खेमराज गिड़िया का संक्षिप्त परिचय देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं –

जन्म : सन् 1919 चांदरख (जोधपुर)

पिता : श्री हंसराज, **माता :** श्रीमती मेहंदीबाई

शिक्षा/व्यवसाय : मात्र प्रायमरी शिक्षा प्राप्त कर मात्र 12 वर्ष की उम्र में ही व्यवसाय में लग गए।

सत्-समागम : सन् 1950 में पूज्य श्रीकानजीस्वामी का परिचय सोनगढ़ में हुआ।

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा : मात्र 34 वर्ष की उम्र में सन् 1953 में पूज्य स्वामीजी से सोनगढ़ में ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा ली।

परिवार : आपके 4 पुत्र एवं 2 पुत्रियाँ हैं। पुत्र – दुलीचन्द, पन्नालाल, मोतीलाल एवं प्रेमचंद। तथा पुत्रियाँ – ब्र. ताराबेन एवं मैनाबेन। दोनों पुत्रियों ने मात्र 18 वर्ष एवं 20 वर्ष की उम्र में ही आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा लेकर सोनगढ़ को ही अपना स्थायी निवास बना लिया।

विशेष : भावनगर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में भगवान के माता-पिता बने। सन् 1959 में खैरागढ़ में जिनमंदिर निर्माण कराया एवं पूज्य गुरुदेवश्री के शुभ हस्ते प्रतिष्ठा में विशेष सहयोग दिया। सन् 1988 में 25 दिवसीय 70 यात्रियों सहित दक्षिण तीर्थयात्रा संघ निकाला एवं अनेक सामाजिक कार्यों के अलावा अब व्यवसाय से निवृत्त होकर अधिकांश समय सोनगढ़ में रहकर आत्म-साधना में बिताते हैं।

श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रंथमाला का १५वाँ पुष्प

जैनधर्म की कहानियाँ

(भाग-१०)

सम्पादक :

पण्डित रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर

प्रकाशक :

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन

महावीर चौक, खैरागढ़ – ४९१ ८८१ (मध्यप्रदेश)

और

श्री कहान स्मृति प्रकाशन

सन्त सान्निध्य, सोनगढ़ – ३६४२५० (सौराष्ट्र)

तृतीय आवृत्ति
3200 प्रतियाँ
अबतक कुल : 13600
卐
महावीर निर्वाण महोत्सव के
(9 नवम्बर, 2007)
मांगलिक प्रसंग पर प्रकाशित

©
सर्वाधिकार सुरक्षित

:: न्यौछावर ::
सात रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान

अ. भा. जैन युवा फैडरेशन शाखा
श्री खेमराज प्रेमचंद जैन,
'कहान-निकेतन' खैरागढ़-४९१८८१
जिला-राजनाँदगाँव (छत्तीसगढ़)

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए-४, बापूनगर,
जयपुर-३०२०१५ (राजस्थान)

ब्र. ताराबेन मैनाबेन जैन
'कहान रश्मि', सोनगढ़-३६४२५०
जिला-भावनगर (सौराष्ट्र)

अनुक्रमणिका

१.	जरा सा अविवेक	११
२.	राजा मधु को वैराग्य	१६
३.	मथुरा में सप्तऋषि...	२१
४.	मथुरा में चार्तुमास और...	२६
४.	आपस में धर्म चर्चा	३१
५.	कर्म को कृष करे सो...	३५
६.	अकम्पनाचार्य की अडिगता	३८
७.	सिद्ध भगवान की आत्मकथा	४०
८.	कभी सोचा! तुम्हारा परभव	४६
९.	जो होता है सब अच्छे के...	५१
१०.	हसमुख की फरियाद	५४
११.	दो भाई, शान्ति की शोध में	५७
१२.	धन्य है वह पुत्र और...	५९
१३.	अमरकुमार की अमर कहानी	६१
१४.	जीवन का ध्येय	६७
१५.	सुखी कौन ?	६९
१६.	सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कौन ?	७१
१७.	प्रेरक प्रसंग	७३

:: मुद्रण ::
जैन कम्प्यूटर्स, जयपुर
मोवाइल : 094147-17816
फोन : 0141-2701056
फैक्स : 0141-2709865

प्रकाशकीय

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी द्वारा प्रभावित आध्यात्मिक क्रान्ति को जन-जन तक पहुँचाने में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का योगदान अविस्मरणीय है, उन्हीं के मार्गदर्शन में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की स्थापना की गई है। फैडरेशन की खैरागढ़ शाखा का गठन २६ दिसम्बर, १९८० को पण्डित ज्ञानचन्दजी, विदिशा के शुभ हस्ते किया गया। तब से आज तक फैडरेशन के सभी उद्देश्यों की पूर्ति इस शाखा के माध्यम से अनवरत हो रही है।

इसके अन्तर्गत सामूहिक स्वाध्याय, पूजन, भक्ति आदि दैनिक कार्यक्रमों के साथ-साथ साहित्य प्रकाशन, साहित्य विक्रय, श्री वीतराग विद्यालय, ग्रन्थालय, कैसेट लायब्रेरी, साप्ताहिक गोष्ठी आदि गतिविधियाँ उल्लेखनीय हैं; साहित्य प्रकाशन के कार्य को गति एवं निरंतरता प्रदान करने के उद्देश्य से सन् १९८८ में श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला की स्थापना की गई।

इस ग्रन्थमाला के परम शिरोमणि संरक्षक सदस्य २१००१/- में, संरक्षक शिरोमणि सदस्य ११००१/- में तथा परमसंरक्षक सदस्य ५००१/- में भी बनाये जाते हैं, जिनके नाम प्रत्येक प्रकाशन में दिये जाते हैं।

पूज्य गुरुदेव के अत्यन्त निकटस्थ अन्तेवासी एवं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन उनकी वाणी को आत्मसात करने एवं लिपिबद्ध करने में लगा दिया – ऐसे ब्र. हरिभाई का हृदय जब पूज्य गुरुदेवश्री का चिर-वियोग (वीर सं. २५०६ में) स्वीकार नहीं कर पा रहा था, ऐसे समय में उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री की मृत देह के समीप बैठे-बैठे संकल्प लिया कि जीवन की सम्पूर्ण शक्ति एवं सम्पत्ति का उपयोग गुरुदेवश्री के स्मरणार्थ ही खर्च करूँगा।

तब श्री कहान स्मृति प्रकाशन का जन्म हुआ और एक के बाद एक गुजराती भाषा में सत्साहित्य का प्रकाशन होने लगा, लेकिन अब हिन्दी, गुजराती दोनों भाषा के प्रकाशनों में श्री कहान स्मृति प्रकाशन का सहयोग प्राप्त हो रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप नये-नये प्रकाशन आपके सामने हैं।

साहित्य प्रकाशन के अन्तर्गत जैनधर्म की कहानियाँ भाग १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२,१३,१४,१५,१६,१७,१८ एवं अनुपम संकलन (लघु

जिनवाणी संग्रह), चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी-गुजराती), पाहुड़दोहा-भव्यामृत शतक, आत्मसाधना सूत्र, विराग सरिता तथा लघुतत्त्वस्फोट, अपराध क्षणभर का (कॉमिक्स) – इसप्रकार २६ पुष्प प्रकाशित किये जा चुके हैं।

जैनधर्म की कहानियाँ भाग-१० के रूप में ब्र. हरिलाल जैन, सोनगढ़ द्वारा लिखित १७ पौराणिक कथाएँ एवं ७ प्रेरक प्रसंगों को प्रकाशित किया जा रहा है। सहज बोधगम्य एवं सरल-सुबोध शैली में लिखी गई इन कहानियों के माध्यम से ब्र. जी ने हमें उत्कृष्ट तत्त्वज्ञान प्रदान किया है। अत: हम उनके हृदय से आभारी हैं।

इनका सम्पादन एवं वर्तनी की शुद्धिपूर्वक मुद्रण कर पण्डित रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर ने इन्हें और भी सुन्दर एवं आकर्षक बना दिया है। अत: हम उनके भी आभारी हैं। आशा है पाठकगण इनसे अपने जीवन में पवित्रता एवं सुदृढ़ता प्राप्त कर सन्मार्ग पर चलकर अपना जीवन सफल करेंगे।

जैन बाल साहित्य अधिक से अधिक संख्या में प्रकाशित हो। – ऐसी हमारी भावी योजना है। इस सन्दर्भ में आपके बहुमूल्य सहयोग व सुझाव अपेक्षित हैं।

साहित्य प्रकाशन फण्ड, आजीवन ग्रन्थमाला परमशिरोमणि संरक्षक, शिरोमणि संरक्षक, परमसंरक्षक एवं संरक्षक सदस्यों के रूप में जिन दातार महानुभावों का सहयोग मिला है, हम उन सबका भी हार्दिक आभार प्रकट करते हैं और आशा करते हैं कि भविष्य में भी सभी इसी प्रकार सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

विनीत:

मोतीलाल जैन	प्रेमचन्द जैन
अध्यक्ष	**साहित्य प्रकाशन प्रमुख**

आवश्यक सूचना

पुस्तक प्राप्ति अथवा सहयोग हेतु राशि ड्राफ्ट द्वारा
"**अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, खैरागढ़**" के नाम से भेजें।
हमारा बैंक खाता स्टेट बैंक आफ इण्डिया की खैरागढ़ शाखा में है।

विनम्र आदराञ्जली

जन्म
1/12/1978
(खैरागढ़, म.प्र.)

स्वर्गवास
2/2/1993
(दुर्ग पंचकल्याणक)

स्व. तन्मय (पुखराज) गिड़िया

अल्पवय में अनेक उत्तम संस्कारों से सुरभित, भारत के सभी तीर्थों की यात्रा, पर्वों में यम-नियम में कट्टरता, रात्रि भोजन त्याग, टी.वी. देखना त्याग, देवदर्शन, स्वाध्याय, पूजन आदि छह आवश्यक में हमेशा लीन, सहनशीलता, निर्लोभता, वैरागी, सत्यवादी, दान शीलता से शोभायमान तेरा जीवन धन्य है।

अल्पकाल में तेरा आत्मा असार-संसार से मुक्त होगा (वह स्वयं कहता था कि मेरे अधिक से अधिक 3 भव बाकी हैं।) चिन्मय तत्त्व में सदा के लिए तन्मय हो जावे – ऐसी भावना के साथ यह वियोग का वैराग्यमय प्रसंग हमें भी संसार से विरक्त करके मोक्षपथ की प्रेरणा देता रहे – ऐसी भावना है।

हम हैं

दादा	स्व. श्री कंवरलाल जैन	**दादी**	स्व. मथुराबाई जैन
पिता	श्री मोतीलाल जैन	**माता**	श्रीमती शोभादेवी जैन
बुआ	श्रीमती ढेलाबाई	**फूफा**	स्व. तेजमाल जैन
जीजा	श्री शुद्धात्मप्रकाश जैन	**जीजी**	सौ. श्रद्धा जैन, विदिशा
जीजा	श्री योगेशकुमार जैन	**जीजी**	सौ. क्षमा जैन, धमतरी

हमारे मार्गदर्शक

श्री दुलीचंद बरडिया राजनाँदगाँव
पिता – स्व. फतेलालजी बरडिया

श्रीमती स्व. सन्तोषबाई बरडिया
पिता – स्व. सिरेमलजी सिरोहिया

सरल स्वभावी बरडिया दम्पत्ति अपने जीवन में वर्षों से सामाजिक और धार्मिक गतिविधियों से जुड़े हैं। सन् 1993 में आप लोगों ने 80 साधर्मियों को तीर्थयात्रा कराने का पुण्य अर्जित किया है। इस अवसर पर स्वामी वात्सल्य कराकर और जीवराज खमाकर शेष जीवन धर्मसाधना में बिताने का मन बनाया है।

विशेष – आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य श्री कानजीस्वामी के दर्शन और सत्संग का लाभ लिया है।

परिवार

पुत्र	पुत्रवधु	पुत्री	दामाद
ललित	लीला	चन्द्रकला	गौतमचंद बोथरा,
स्व. निर्मल	प्रभा		भिलाई
अनिल	मंजु	शशिकला	अरुणकुमार पालावत,
सुशील	सुधा		जयपुर

ग्रन्थमाला सदस्यों की सूची

परमशिरोमणि संरक्षक सदस्य

श्री हेमल भीमजी भाई शाह, लन्दन
श्री विनोदभाई देवसी कचराभाई शाह, लन्दन
श्री स्वयं शाह ओस्त्रो व्स्की ह. शीतल विजेन
श्रीमती ज्योत्सना बेन विजयकान्त शाह, अमेरिका
श्रीमती मनोरमादेवी विनोदकुमार, जयपुर
पं. श्री कैलाशचन्द पवनकुमार जैन, अलीगढ़
श्री जयन्तीलाल चिमनलाल शाह ह. सुशीलाबेन अमेरिका
श्रीमती सोनिया समीत भायाणी-
मीरायाम प्रशांत भायाणी अमेरिका
श्रीमती अर्चना देवी ध.प. श्री सतीशचन्दजी जैन (ठेकेदार)

शिरोमणि संरक्षक सदस्य

झनकारीबाई खेमराज बाफना चेरिटेबल ट्रस्ट, खैरागढ़
मीनाबेन सोमचन्द भगवानजी शाह, लन्दन
श्री अभिनन्दनप्रसाद जैन, सहारनपुर
श्रीमती सूरजबेन अमुलखभाई सेठ, मुम्बई
श्रीमती ज्योत्सना महेन्द्र मणीलाल मलाणी, माटुंगा
स्व. धापू देवी ताराचन्द गंगवाल, जयपुर
ब्र. कुसुम जैन, कुम्भोज बाहुबली
श्रीमती पुष्पलता अजितकुमारजी, छिन्दवाड़ा
सौ. सुमन जैन जयकुमारजी जैन डोगरगढ़

परमसंरक्षक सदस्य

श्रीमती शान्तिदेवी कोमलचंद जैन, नागपुर
श्रीमती पुष्पाबेन कांतिभाई मोटाणी, बम्बई
श्रीमती हंसुबेन जगदीशभाई लोदरिया, बम्बई
श्रीमती लीलादेवी श्री नवरत्नसिंह चौधरी, भिलाई
श्रीयुत प्रशान्त-अक्षय-सुकान्त-केवल, लन्दन
श्रीमती पुष्पाबेन भीमजीभाई शाह, लन्दन
श्री सुरेशभाई मेहता, बम्बई एवं श्री दिनेशभाई, मोरबी
श्री महेशभाई मेहता, बम्बई एवं
श्री प्रकाशभाई मेहता, नेपाल
श्री रमेशभाई, नेपाल एवं श्री राजेशभाई मेहता, मोरबी
श्रीमती वसंतबेन जेवंतलाल मेहता, मोरबी
स्व.हीराबाई, हस्ते-श्री प्रकाशचंद मालू, रायपुर
श्रीमती चन्द्रकला प्रेमचन्द जैन, खैरागढ़
स्व. मथुराबाई कँवरलाल गिड़िया, खैरागढ़
सरिता बेन ह. पारसमल महेन्द्रकुमार जैन, तेजपुर
श्रीमती कंचनदेवी दुलीचन्द जैन गिड़िया, खैरागढ़
दमयन्तीबेन हरीलाल शाह चैरिटेबल ट्रस्ट, मुम्बई

संरक्षक सदस्य

श्रीमती शोभादेवी मोतीलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती ढेलाबाई तेजमाल नाहटा, खैरागढ़
श्री शैलेषभाई जे. मेहता, नेपाल
ब्र. ताराबेन ब्र. मैनाबेन, सोनगढ़
स्व. अमराबाई नांदगांव, ह. श्री घेवरचंद डाकलिया
श्रीमती चन्द्रकला गौतमचन्द बोथरा, भिलाई
श्रीमती गुलाबबेन शांतिलाल जैन, भिलाई
श्रीमती राजकुमारी महावीरप्रसाद सरावगी, कलकत्ता
श्री प्रेमचन्द रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर
श्री प्रफुल्लचन्द संजयकुमार जैन, भिलाई
स्व. लुनकरण, झीपुबाई कोचर, कटंगी
स्व. श्री जेठाभाई हंसराज, सिकंदराबाद
श्री शांतिनाथ सोनाज, अकलूज
श्रीमती पुष्पाबेन चन्दुलाल मेघाणी, कलकत्ता
श्री लवजी बीजपाल गाला, बम्बई
स्व. कंकुबेन रिखबदास जैन ह. शांतिभाई, बम्बई
एक मुमुक्षुभाई, ह. सुकमाल जैन, दिल्ली
श्रीमती शांताबेन श्री शांतिभाई झवेरी, बम्बई
स्व. मूलीबेन समरथलाल जैन, सोनगढ़
श्रीमती सुशीलाबेन उत्तमचंद गिड़िया, रायपुर
स्व. रामलाल पारख, ह. नथमल नांदगांव
श्री बिशम्भरदास महावीरप्रसाद जैन सर्राफ, दिल्ली
श्रीमती जैनाबाई, भिलाई ह. कैलाशचन्द शाह
सौ. रमाबेन नटवरलाल शाह, जलगाँव
सौ. सविताबेन रसिकभाई शाह, सोनगढ़
श्री फूलचंद विमलचंद झांझरी उज्जैन,
श्रीमती पतासीबाई तिलोकचंद कोठारी, जालबांधा
श्री छोटालाल केशवजी भायाणी, बम्बई
श्रीमती जशवंतीबेन बी. भायाणी, घाटकोपर
स्व. भैरोदान संतोषचन्द कोचर, कटंगी
श्री चिमनलाल ताराचंद कामदार, जैतपुर
श्री तखतराज कांतिलाल जैन, कलकत्ता

श्रीमती ढेलाबाई चेरिटेबल ट्रस्ट, खैरागढ़
श्रीमती तेजबाई देवीलाल मेहता, उदयपुर
श्रीमती सुधा सुबोधकुमार सिंघई, सिवनी
गुप्तदान, हस्ते – चन्द्रकला बोथरा, भिलाई
श्री फूलचंद चौधरी, बम्बई
सौ. कमलाबाई कन्हैयालाल डाकलिया, खैरागढ़
श्री सुगालचंद विरधीचंद चोपड़ा, जबलपुर
श्रीमती सुनीतादेवी कोमलचन्द कोठारी, खैरागढ़
श्रीमती स्वर्णलता राकेशकुमार जैन, नागपुर
श्रीमती कंचनदेवी पन्नालाल गिड़िया, खैरागढ़
श्री लक्ष्मीचंद सुन्दरबाई पहाड़िया, कोटा
श्री शान्तिकुमार कुसुमलता पाटनी, छिन्दवाड़ा
श्री छीतरमल बाकलीवाल जैन ट्रेडर्स, पीसांगन
श्री किसनलाल देवड़िया ह. जयकुमारजी, नागपुर
सौ. चिंताबाई मिट्ठूलाल मोदी, नागपुर
श्री सुदीपकुमार गुलाबचन्द, नागपुर
सौ. शीलाबाई मुलामचन्दजी, नागपुर
सौ. मोतीदेवी मोतीलाल फलेजिया, रायपुर
सौ. सुमन जयकुमार जैन, डोंगरगढ़
समकित महिला मंडल, डोंगरगढ़
सौ. कंचनदेवी जुगराज कासलीवाल, कलकत्ता
श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल, सागर
सौ. शांतिदेवी धनकुमार जैन, सूरत
श्री चिन्द्रूप शाह, बम्बई
स्व. फेफाबाई पुसालालजी, बैंगलोर
ललितकुमार डॉ. श्री तेजकुमार गंगवाल, इन्दौर
स्व. नोकचन्दजी, ह. केशरीचंद सावा सिल्हाटी
कु. वंदना पन्नालालजी जैन, झाबुआ
कु. मीना राजकुमार जैन, धार
सौ. वंदना संदीप जैनी ह.कु. श्रेया जैनी, नागपुर
सौ. केशरबाई ध. प. स्व. गुलाबचन्द जैन, नागपुर
जयवंती बेन किशोरकुमार जैन
श्री मनोज शान्तिलाल जैन
श्रीमती शकुन्तला अनिलकुमार जैन, मुंगावली
इंजी.आरती पिता श्री अनिलकुमार जैन, मुंगावली
श्रीमती पानादेवी मोहनलाल सेठी, गोहाटी
श्रीमती माणिकबाई माणिकचन्द जैन, इन्दौर
भूरीबाई स्व. फूलचन्द जैन, जबलपुर
स्व. सुशीलाबेन हिम्मतलाल शाह, भावनगर
श्री किशोरकुमार राजमल जैन, सोनगढ़
श्री जयपाल जैन, दिल्ली
श्री सत्संग महिला मण्डल, खैरागढ़
श्रीमती किरण – एस.के. जैन, खैरागढ़
स्व. गैंदामल - ज्ञानचन्द - सुमतप्रसाद, खैरागढ़
स्व. मुकेश गिड़िया स्मृति ह. निधि-निश्चल, खैरागढ़
सौ. सुषमा जिनेन्द्रकुमार, खैरागढ़
श्री अभयकुमार शास्त्री, ह. समता-नम्रता, खैरागढ़
स्व. वसंतबेन मनहरलाल कोठारी, बम्बई
सौ. अचरजकुमारी श्री निहालचन्द जैन, जयपुर
सौ. गुलाबदेवी लक्ष्मीनारायण रारा, शिवसागर
सौ. शोभाबाई भवरीलाल चौधरी, यवतमाल
सौ. ज्योति सन्तोषकुमार जैन, डोभी
श्री बाबूलाल तोताराम लुहाड़िया, भुसावल
स्व. लालचन्द बाबूलाल लुहाड़िया, भुसावल
सौ. ओमलता लालचन्द जैन, भुसावल
श्री योगेन्द्रकुमार लालचन्द लुहाड़िया, भुसावल
श्री ज्ञानचन्द बाबूलाल लुहाड़िया, भुसावल
सौ. साधना ज्ञानचन्द जैन लुहाड़िया, भुसावल
श्री देवेन्द्रकुमार ज्ञानचन्द लुहाड़िया, भुसावल
श्री महेन्द्रकुमार बाबूलाल लुहाड़िया, भुसावल
सौ. लीना महेन्द्रकुमार जैन, भुसावल
श्री चिन्तनकुमार महेन्द्रकुमार जैन, भुसावल
श्री कस्तूरी बाई बल्लभदास जैन, जबलपुर
स्व.यशवंत छाजेड़ ह.श्री पन्नालाल जैन, खैरागढ़
अनुभूति-विभूति अतुल जैन, मलाड
श्री आयुष्य जैन संजय जैन, दिल्ली
श्री सम्यक अरुण जैन, दिल्ली
श्री सार्थक अरुण जैन, दिल्ली
श्री केशरीमल नीरज पाटनी, ग्वालियर
श्री परागभाई हरिवदन सत्यपंथी, अहमदाबाद
लक्ष्मीबेन वीरचन्द शाह ह. शारदाबेन, सोनगढ़
श्री प्रशम जीतूभाई मोदी, सोनगढ़
श्री हेमलाल मनोहरलाल सिंघई, बोनकट्टा
स्व. दुर्गा देवी स्मृति ह. दीपचन्द चौपड़ा, खैरागढ़
श्री पारसमल महेन्द्रकुमार, तेजपुर

साहित्य प्रकाशन फण्ड

३०१/- रु. देने वाले –

श्री बसंत जैन, ग्वालियर

२५१/- रु. देने वाले –

श्री खेमराज प्रेमचंद अभय कुमार जैन, खैरागढ़

श्री ढेलाबाई ह. शोभादेवी मोतीलाल जैन, खैरागढ़

श्री दुलीचंद कमलेश जिनेश जैन, खैरागढ़

ब्र. ताराबेन मैनाबेन जैन, सोनगढ़

झनकारी बाई खेमराज बाफना चैरे. ट्रस्ट, खैरागढ़

श्रीमती प्रज्ञाबेन अनिल भाई सेठ, घाटकोपर

२०१/- रु. देने वाले –

सौ. मनोरमा विनोद कुमार जैन, जयपुर

निर्मला बहन सुमेरचंद जैन, अहमदाबाद

श्री मनन चेतन भाई डगली, घाटकोपर

श्री शीलचंद जैन, बीना बजरिया

श्री अशोक कुमार जैन, रायपुर

सौ. सुशीला जैन उत्तमचंद जैन, रायपुर

सौ. समता-नम्रता, कानपुर-सोनगढ़

श्री रमेश चन्द जैन शास्त्री, जयपुर

१०१/- रु. देने वाले –

डॉ. पुष्पा दक्षेस शाह, रायपुर

श्री महेन्द्र कुमार अशोक कुमार जैन, खैरागढ़

श्री घेवरचन्द राजेन्द्र कुमार डाकलिया, राजनांदगांव

सौ. कल्पना अनिल जैन, खैरागढ़

श्री कैलाश चंद जैन शाह, भिलाई

श्री विमलचंद जैन झाझरी, उज्जैन

उत्तम क्षमा

आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी एक प्रतिभाशाली असाधारण विद्वान तो थे ही, किन्तु साथ ही अलौकिक महापुरुष भी थे। इनकी विद्वत्ता को देखकर जयपुर नरेश महाराज माधवसिंह भी इनका बड़ा सम्मान करते थे। धर्मचर्चा करने ये कभी-कभी राजदरबार में भी जाया करते थे।

एक बार ये राजा से मिलने के लिए राजभवन में जा रहे थे। राजभवन में पहरे पर एक नया सैनिक खड़ा था। ये रोज की तरह अपने सीधे-साधे साधारण वेश में पहरेदार से बिना कुछ पूछे राजदरबार के भीतर चले गये।

सैनिक ने दौड़कर इनको एक तमाचा जड़ते हुए कहा – 'क्या तुम में इतनी भी सभ्यता नहीं कि कम से कम किसी से पूछ लें। उठाया मुंह और चल दिए राजा से मिलने !' पण्डितजी ने कहा – 'अच्छा भाई ! अब पूछ लेते हैं, अब तो चले जावें !' 'हाँ जाओ !' पण्डितजी ने राजसभा में उस पहरेदार की राजा से बड़ी प्रशंसा की और कहा आपका नया पहरेदार सैनिक कर्तव्यनिष्ठ और ईमानदार आदमी है, इसको कुछ पारितोषिक अवश्य दिया जावे। राजा ने उसकी इतनी प्रशंसा सुनकर उस पहरेदार को बुलाया। पण्डितजी को राजा के बिल्कुल पास बैठा हुआ देखकर पहरेदार काँप उठा। उसने सोचा ये तो कोई राजा का निजी आदमी है और इन्होंने मेरी शिकायत कर दी है।

इतने में राजा ने कहा – 'सैनिक ! पण्डितजी तुम्हारी ईमानदारी की प्रशंसा कर रहे हैं, इसलिए आओ तुम्हें पारितोषिक दिया जा रहा है।' पहरेदार ने व्यंग समझ कर कहा – 'अन्नदाता ! मारो या पालो, मुझसे अपराध तो बन पड़ा है, किन्तु मैंने अनजाने में ही इन्हें मार दिया। मैं नहीं जानता था कि सीधे-साधे वेश में ये कौन महाशय हैं ? पहरेदार ने सब घटना सुनाई। राजा पहरेदार से सच्ची और पूरी घटना सुनकर पण्डितजी की महानता पर आनन्द विभोर हो उठा।

– सन्मति सन्देश से साभार

१

जरा सा अविवेक

(सुभौम चक्रवर्ती)

राजभवन सुन्दर ध्वजा-पताका आदि से सुशोभित था, चारों ओर दीवारों और कोटों पर अद्‌भुत सुन्दर चित्र बनाये हुए थे; छह खंड के अधिपति सुभौम चक्रवर्ती रत्नजड़ित स्वर्ण-सिंहासन पर विराजमान थे, पास में मंत्रीगण तथा अन्य सभासद बैठे थे। संगीत, नृत्य-गान तथा घुंघरुओं की छमछम से सबका मन मुग्ध हो रहा था। अचानक एक पूर्वभव का बैरी देव बैर लेने की इच्छा से व्यापारी का भेष धारण करके चक्रवर्ती को एक फल भेंट करते हुए कहता है कि– "हे राजन्! आपने ऐसा मधुर फल कभी नहीं खाया होगा।"

राजा फल खाकर बहुत प्रसन्न होता है और उससे पूछता है कि भाई! आप ऐसा सुन्दर स्वादिष्ट फल कहाँ से लाये?

व्यापारी ने कहा—'राजन्! हमारे देश में चलिये, मैं वहाँ आपको ऐसे अनेकों फल खिलाऊँगा।''

देखो! रसना इन्द्रिय की लोलुपता के कारण चक्रवर्ती का विवेक भी नष्ट हो गया। उसने विचार तक नहीं किया कि भला चक्रवर्ती के समान भोगोपभोग की सामग्री किसे मिल सकती है? वह तो तीव्र आसक्ति के कारण उन फलों का भक्षण करने में ही सम्पूर्ण सुख मानने लगा; इसलिये विचारने लगा कि सब सामग्री होने पर भी इस फल की मेरे यहाँ कमी नहीं रहनी चाहिये।

यदि वह चाहता तो अपने आज्ञाकारी सेवक देवों द्वारा अनुपम फल मँगवा सकता था, किन्तु उसे तो उस फल का स्वाद चखने की लोलुपता का ऐसा नशा चढ़ गया कि अब उसे अपने यहाँ की सब सामग्री नीरस लगने लगी। सुभौम चक्रवर्ती ने विचार किया कि यदि मैं वहाँ अकेला जाऊँगा तो कितने फल खा सकूंगा? इसलिये मुझे वहाँ कुटुम्ब सहित जाना चाहिये। ऐसा विचार कर चक्रवर्ती ने विशाल चर्मरत्न नामक नौका में स्त्री-पुत्रादि सहित समुद्र में प्रयाण किया।

अब तो देव मन में अत्यन्त प्रसन्न हो रहा था कि अकेले राजा को ही नहीं, किन्तु उसके समस्त परिवार को मैं डुबो दूँगा। साथ ही उसे यह भी विचार आ रहा था कि जिसके हजारों देव सेवक हैं, नवनिधि और चौदह रत्न हैं, उसे मार डालना कोई आसान काम नहीं है।

सुभौम चक्रवर्ती समुद्र की तरंगों पर तैरती हुई नौका में हास्य-विलास करता हुआ सुख सागर में मस्त हो रहा था कि तभी अचानक उस देव द्वारा चलाये गये भयंकर तूफान में नौका डोलने लगी, जिससे चक्रवर्ती का हृदय काँपने लगा। उसने भयभीत होकर देव से पूछा कि अब बचने का कोई उपाय है? पापी राजा के

पाप का उदय होने से और देव को दुष्टबुद्धि उत्पन्न होने से उसने कहा कि सागर के मध्य में दूसरा तो कोई उपाय नहीं है। हाँ, यदि आप अनादि-निधन नमस्कार मंत्र, अपराजित मंत्र, जो णमो अरहंताणं है, उसे जल में लिखकर पैर से मिटा दें तो सब बच सकते हैं।

वह हित-अहित का विवेक छोड़कर तो घर से बाहर निकला

हो था, अपने पास सर्व सम्पत्ति और अनुपम पुण्य का स्थान ऐसे चक्रवर्ती पद का भी जिसने विवेक खो दिया था और अजान व्यक्ति का विश्वास करके उसके साथ एक तुच्छ फल खाने के लोभ में चला गया था —ऐसा वह सुभौम चक्रवर्ती **इस अनित्य जीवन को नित्य बने रहने के लोभ से व मौत के भय से ज्यों ही णमोकार महामन्त्र लिखकर पैर से मिटाने लगा,** त्यों ही पाप का रस अति तीव्र होने लगा और नौका डूबने लगी। तब पूर्व का बैरी देव कहने लगा कि ''मैं वही रसोइया हूँ, जिसके ऊपर आपने गरम-गरम खीर डाली थी और जिसने तड़प-तड़प कर प्राण त्याग दिये थे। आर्तध्यान से मैं व्यन्तर जाति का देव हुआ हूँ। अवधिज्ञान के द्वारा पूर्वभव का बैर याद आने पर मैंने उसका बदला लेने के लिये ही यह उपाय किया है।''

अब पश्चाताप करने से क्या होता? चक्रवर्ती भी ऐसे

अपमानजनक शब्द सुनकर तथा कुटुम्ब-परिवार सहित अपना घात देखकर तीव्र संक्लेश भाव से मरण को प्राप्त हुआ और सातवें नरक में गया, जहाँ असंख्यात असंख्य वर्षों का एक सागर होता है — ऐसे ३३ सागरों के लिए वह अनन्त दुःख सागर में डूब गया। यह जीव अपने असली स्वरूप को भूल ने रूप तीव्रमोह के कारण महान दुःख को भोगता है। ज्ञानी निष्कारण करुणा से संबोधन करते हैं कि—

अनन्तानन्त काल में महान दुर्लभ मनुष्यपर्याय मिली, इस अवसर पर भी, जो विषयों में लीन रहते हैं, वे राख के लिये रत्न को जलाते हैं।

यह जीव आधी आयु तो निद्रादि प्रमाद में गँवाता है, कुछ पाप में और जो समय शेष रहता है उसमें कदाचित् कुधर्म को धर्म मानने वालों के पास जाय तो वहाँ मिथ्या मान्यता दृढ़ करके जीवन बर्बाद कर देता है। उपरान्त इन्द्रियों का दासत्व, व्यसनों की गुलामी (बीड़ी, तम्बाकू आदि भी व्यसनों में गर्भित है), मिथ्यात्व तथा मानादि कषाय द्वारा जीव हित-अहित का भान भूल जाता है।

जो लौकिक सज्जनता का भी ध्यान न रखे, अभक्ष्य-भक्षण, अन्याय, अनीति, द्रव्य-भाव हिंसा करना, झूठ बोलना, पर की निंदा आदि पाप भावों से न डरे, स्वच्छंद वर्तन करे तो दुर्लभ अवसर खोकर वह मात्र पाप को ही बाँधने वाला होता है।

मिथ्यात्व और क्रोध, मान, माया, लोभादि कषाय की प्रवृत्ति से क्षण-क्षण में जो अपना भयानक भावमरण होता है, उससे बचने के लिये प्रथम तो सत्समागम से निर्मल तत्त्वज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

सच्चा सुख अन्तर में है, उसको भूलकर दुःख को ही सुख मानने रूप झूठे उपाय द्वारा यह जीव अनादि से दुःख को ही भोगता है; इसलिये हे जीव! **पुनः पश्चाताप करने का समय न आये ऐसे तत्त्वज्ञान की प्राप्ति का प्रयत्न कर!**

प्रयत्न कर!! इससे शुद्ध स्वरूप में रुचि होगी और विषय-

कषाय आदि पाप स्वयमेव नष्ट होने लगेंगे। कहा भी है—

''तुं रूचतां जगतनी रुचि आलसे सौ,
तुं रीझतां सकल ज्ञायक देव रीझे।''

चल भँवरे गुलाब की सुगन्ध लेने

गुलाब के फूलों पर बसने वाले भँवरे ने विष्टा पर रहने वाले भँवरे से कहा कि हे भँवरे! तू मेरी ही जाति का है, गुलाब की सुगंध लेने मेरे पास चल!

विष्टा का भँवरा विष्टा की दो गोलियाँ अपनी नाक में लेकर गुलाब के फूल पर जा बैठा। गुलाब के भँवरे ने उससे पूछा— क्यों भाई! कैसी सुगंध आ रही है? विष्टा के भँवरे ने उत्तर दिया— मुझे तो कुछ भी सुगंध नहीं आती, वहाँ के जैसी ही गंध है। उसका यह उत्तर सुनकर गुलाब के भँवरे ने विचार किया कि ऐसा कैसे हो सकता है? उसकी नाक में देखने पर उसे उसकी नाक में विष्टा की दो गोलियाँ दिखाई दीं। अरे, विष्टा की दो गोलियाँ नाक में रखकर आया है फिर सुगंध कहाँ से आये? —ऐसा कह कर उसने वे गोलियाँ निकलवा दीं। विष्टा की गोलियाँ निकलते ही वह विष्टा का भँवरा कहने लगा— अहो! ऐसी सुगंध तो मैंने कभी नहीं ली!

इसीप्रकार अनादिकाल से संसार में परिभ्रमण करते हुए अज्ञानी जीवों से ज्ञानी गुरु कहते हैं कि— चल! तुझे तेरा सिद्धपद बतलाऊँ। तब वे अज्ञानी जीव रुचि में पुण्य-पाप की पकड़रूप दो गोलियाँ लेकर कभी-कभी ज्ञानी—तीर्थंकर के निकट धर्म सुनने जाते हैं, तब भी उसे अनादिकालीन मिथ्यावासना के कारण वैसा ही दिखाई देता है, जैसा उसने पूर्व में मान रखा था; परन्तु यदि एकबार बाह्यदृष्टि का आग्रह छोड़कर (पुण्य-पाप की रुचि छोड़कर), सरलता रखकर ज्ञानी का उपदेश सुने तो शुद्ध निर्मल दशा को प्राप्त हो जाये, उसे पुण्य-पाप की रुचि रूपी दुर्गंध का अनुभव छूटकर सिद्धपद की सुगंध का अपूर्व अनुभव हो। तब उसे ऐसा मालूम होगा कि अहो! ऐसा आत्मस्वभाव तो मैंने अभी तक कभी जाना ही नहीं था, मुझे तो अभी तक ऐसा कभी अनुभव ही नहीं हुआ। समयसार में श्री आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं कि-

हे भव्य! हम अपने सम्पूर्ण वैभव से तुझे तेरा शुद्ध आत्मस्वभाव बतलाते हैं, तू उसे जान!

२

राजा मधु को वैराग्य

सोनगढ़ जिनमन्दिर के एक चित्र में मथुरा नगरी में सात मुनि भगवन्तों (सप्तर्षि) के आगमन का अत्यन्त भाव वाही दृश्य है......एक साथ सात वीतरागी मुनिवरों को देखकर भक्त हृदय प्रफुल्लित होते हैं और सहज ही उस चित्र की कथा जानने की उत्कंठा जागृत होती है..... पद्मपुराण में से यहां वह कथा दी गई है। आज भी मथुरा नगरी के जिन मन्दिर में सप्तर्षि मुनिवरों की प्रतिमाजी विराजमान हैं......!

राम-लक्ष्मण आदि लंका को जीतकर अयोध्या लौटे और उनका राज्याभिषेक हुआ। तत्पश्चात् अत्यन्त प्रीति पूर्वक उन्होंने अपने लघुभ्राता शत्रुघ्न से कहा कि— बन्धु! तुम्हें जो देश पसन्द हो वह ले लो। यदि अयोध्या चाहते हो तो आधी अयोध्या ले लो। अथवा राजगृही, पोदनपुर आदि अनेक राजधानियों में से जो तुम्हें पसन्द हो, वहाँ राज्य करो।

तब शत्रुघ्न ने कहा कि— "मुझे मथुरा का राज्य दीजिये।"

रामचन्द्रजी ने कहा कि— हे भ्राता! मथुरा नगरी में तो राजा मधु का राज्य है, वह रावण का दामाद और अनेक युद्धों में विजय प्राप्त करने वाला है, चमरेन्द्र ने उसे त्रिशूलरत्न दिया है और उसका पुत्र लवण सागर भी महा शूरवीर है, उन दोनों पिता-पुत्र को जीतना कठिन है, इसलिये मथुरा को छोड़कर दूसरा जो भी राज्य तुम्हें अच्छा लगे वह ले लो।

शत्रुघ्न ने कहा— मुझे तो मथुरा ही दीजिये, मैं राजा मधु को युद्ध में मधु के छत्ते की भाँति गिरा दूंगा। ऐसा कहकर शत्रुघ्न मथुरा जाने को तैयार हो गये।

तब रामचन्द्रजी ने उनसे कहा कि— भाई, तुम मुझे एक वचन देते जाओ।

शत्रुघ्न ने कहा— बन्धु! आप तो मेरे सर्वस्व हैं, प्राण हैं, राजा मधु के साथ युद्ध करने के अतिरिक्त आप जो भी कहें, मैं वह सब करने को तैयार हूँ।

राम ने कहा— हे वत्स! तुम मधु के साथ युद्ध करो तो उस समय करना, जब उसके हाथ में त्रिशूल न हो।

शत्रुघ्न ने कहा— मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

तत्पश्चात् जिनदेव की पूजा करके तथा सिद्धों को नमस्कार करके माता के पास आकर शत्रुघ्न ने विदा माँगी, तब माता ने कहा कि हे वत्स! तुम्हारी विजय हो। तुम्हारी विजय के पश्चात् मैं जिनेन्द्रदेव की महापूजा कराऊँगी, स्वयं मंगलरूप और तीन लोक के मंगलकर्ता श्री जिनदेव तुम्हारा मंगल करें, सर्वज्ञ भगवान के प्रसाद से तुम्हारी विजय हो, सिद्ध भगवान तुम्हें सिद्धि कर्ता हों, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु परमेष्ठी तुम्हारे विघ्न हरें और कल्याण करें। —ऐसा कहकर माता ने मंगलकारी आशीर्वाद दिया, उसे शिरोधार्य करके शत्रुघ्न ने माता को नमस्कार किया और वहाँ से मथुरा की ओर प्रस्थान किया। लक्ष्मणजी ने उन्हें समुद्रावर्त नामक धनुष देकर कृतान्तवक्र सेनापति को उनके साथ भेजा।

शत्रुघ्न सेना सहित मथुरा के निकट आ पहुंचे और जमुना नदी के किनारे पड़ाव डाला। वहाँ मंत्री चिन्ता करने लगे कि राजा मधु तो महान योद्धा है और यह शत्रुघ्न बालक है, यह शत्रु को किसप्रकार जीत सकेंगे? तब कृतान्तवक्र सेनापति ने कहा कि— अरे मंत्री! आप साहस छोड़कर ऐसे कायरता के वचन क्यों निकाल रहे हैं? जिसप्रकार हाथी महा बलवान है और सूंढ़ द्वारा बड़े-बड़े वृक्षों को उखाड़ फैंकता है, तथापि सिंह उसे पराजित कर देता है; उसीप्रकार मधु राजा महा बलवान होने पर भी शत्रुघ्न उसे अवश्य जीत लेंगे। सेनापति की बात सुनकर सबको बहुत प्रसन्नता हुई।

इतने में नगर में गये हुए गुप्तचरों ने आकर समाचार दिये

कि— इस समय राजा मधु वनक्रीड़ा के लिये नगर के बाहर उपवन में रहता है, उसे खबर तक नहीं है कि आप मथुरा जीतने के लिये आये हैं; इसलिये मथुरा पर आसानी से अधिकार किया जा सकता है। यह सुनकर शत्रुघ्न ने अपने योद्धाओं सहित मथुरा नगरी में प्रवेश किया।

जिसप्रकार योगी कर्मनाश करके सिद्धपुरी में प्रवेश करते हैं, उसीप्रकार शत्रुघ्न द्वारों को तोड़कर मथुरापुरी में प्रविष्ट हुए और आयुधशाला पर अपना अधिकार कर लिया। परचक्र के आगमन से नगरजन भयभीत हो गये; किन्तु शत्रुघ्न ने ऐसा कहकर उन्हें धैर्य बँधाया कि यहाँ श्री राम का राज्य है, उसमें किसी को दु:ख या भय नहीं है।

शत्रुघ्न ने मथुरा में प्रवेश किया है, यह सुनकर राजा मधु क्रोध पूर्वक उपवन से नगर की ओर आया; परन्तु शत्रुघ्न के योद्धाओं ने उसे नगर में प्रविष्ट नहीं होने दिया। **जिसप्रकार मुनिराज के हृदय में मोह का प्रवेश नहीं होता,** उसी प्रकार राजा अनेक उपाय करने पर भी नगर में प्रवेश नहीं कर सका। यद्यपि वह त्रिशूल रहित हो गया था, तथापि महा-अभिमान के कारण उसने शत्रुघ्न से युद्ध किया। युद्ध में राजा मधु का पुत्र लवणसागर सेनापति कृतान्तवक्र के प्रहार से मृत्यु को प्राप्त हुआ। पुत्र की मृत्यु देखकर मधु राजा अत्यन्त शोक एवं क्रोध पूर्वक शत्रुघ्न की सेना से युद्ध करने लगा; किन्तु जिसप्रकार **जिनशासन के स्याद्वादी पण्डित के समक्ष कोई एकान्तवादी नहीं टिक सकता,** उसीप्रकार शत्रुघ्न की वीरता के समक्ष मधु राजा के योद्धा न टिक सके।

शत्रुघ्न को दुर्जय समझकर, स्वयं को त्रिशूल आयुध रहित जानकर तथा पुत्र की मृत्यु और अपनी भी अल्पायु देखकर मधु राजा अत्यन्त विवेकपूर्वक विचार करने लगा कि— **"अहो! संसार का समस्त आरम्भ महा हिंसारूप एवं दु:खदायी है, इसलिये सर्वथा त्याज्य है, मूढ़ जीव इस क्षणभंगुर संसार में सुख**

मान रहे हैं। इस जगत में धर्म ही प्रशंसनीय है। यह दुर्लभ मनुष्य देह पाकर भी जो जीव धर्म में बुद्धि नहीं लगाता वह मोह द्वारा ठगा हुआ अनन्त भवभ्रमण करता है।

अरे! मुझ पापी ने असाररूप संसार को सार समझा, क्षणभंगुर शरीर को ध्रुव माना और अभी तक आत्महित नहीं किया............जब मैं स्वाधीन था, तब मुझे सुबुद्धि उत्पन्न नहीं

हुई, अब तो मेरा अन्तकाल आ गया है,......सर्प डस ले उस समय दूर देश से मणिमंत्र या औषधि मँगवाने से क्या लाभ? इसलिये अब मैं सर्व चिन्ताओं को छोड़कर निराकुलरूप से अपने मन को समाधान करूँ।''

—ऐसा विचार करके युद्ध में हाथी के हौदे पर बैठा हुआ मधु राजा मुनि बनने की भावना भाने लगा.....और बारम्बार अरहन्त-सिद्ध आचार्य-उपाध्याय एवं साधुओं को मन-वचन-काय से नमस्कार करने लगा और सोचने लगा कि अरहन्त-सिद्ध-साधु तथा केवली प्ररूपित धर्म ही मंगलरूप है, वही उत्तमरूप है तथा उसी की मुझे शरण है।

ढाई द्वीप के भीतर कर्मभूमि में (पाँच भरत, पाँच ऐरावत, पाँच विदेह में) जो अरहन्तदेव हैं वे मेरे हृदय में वास करें......मैं बारम्बार उन्हें नमस्कार करता हूँ.....अब मैं सर्व पापों को जीवन पर्यंत छोड़ता हूँ.....अनादिकाल से संसार में उपार्जित मेरे दुष्कृत्य मिथ्या होओ.....अब मैं **तत्त्वज्ञान में स्थिर होकर त्यागने योग्य जो रागादिक उनका त्याग करता हूँ तथा ग्रहण करने योग्य जो निजभाव-जिनभाव, उसे ग्रहण करता हूँ, ज्ञान दर्शन मेरा स्वभाव ही है, वह मुझसे अभेद है, और शारीरिक समस्त पदार्थ मुझसे पृथक् हैं**....सन्यास मरण के समय भूमि अथवा तृणादि का त्याग वह सच्चा त्याग नहीं है; किन्तु दोष रहित —ऐसे शुद्ध आत्मा को अपनाना ही त्याग है। —ऐसा विचार करके मधु राजा ने दोनों प्रकार के परिग्रहों का भावपूर्वक त्याग किया।

जिसका शरीर अनेक घावों से घायल है ऐसा मधु राजा हाथी की पीठ पर बैठा-बैठा केशलोंच करने लगा...वीर रस छोड़कर उसने शांतरस अंगीकार किया....और महा धैर्यपूर्वक अध्यात्म योग में आरूढ़ होकर देह का ममत्व छोड़ दिया....।

मधु राजा की ऐसी परम शांतदशा देखकर शत्रुघ्न कहने लगे कि- ''हे महान आत्मा। मेरा अपराध क्षमा करो।....धन्य है आपके वैराग्य को....।'' युद्ध के समय पहले मधु राजा का वीररस और फिर शांतरस देखकर देव भी आश्चर्य सहित पुष्पवृष्टि करने लगे......महाधीर मधु राजा एक क्षण में समाधिमरण करके तीसरे स्वर्ग में देव हुए और शत्रुघ्न ने उनकी स्तुति करके मथुरा नगरी में प्रवेश किया।

त्रैरूपता को प्राप्त है पर ना तजे एकत्व को।
यह शुद्ध निर्मल आत्मज्योति प्राप्त है जो स्वयं को।।
अनुभव करें हम सतत ही चैतन्यमय उस ज्योति का।
क्योंकि उसके बिना जग में साध्य की हो सिद्धि ना।।२०।।

३

मथुरा में सप्त ऋषि

मथुरा नगरी में एक मधु नामक राजा राज्य करता था। श्री राम चन्द्र के अनुज श्री शत्रुघ्न को मथुरा नगरी अत्यन्त प्रिय थी, वे भी मथुरा का ही राज्य चाहते थे, एतदर्थ शत्रुघ्न ने अवसर पाकर श्रीराम की आज्ञा लेकर मथुरा पर चढ़ाई कर दी और युद्ध में राजा मधु को परास्तकर मथुरा का राज्य करने लगे। राजा मधु तो समाधिमरण पूर्वक देह त्यागकर स्वर्ग चले गये और उनके मरण का समाचार सुनकर उनका परममित्र असुरेन्द्र महाक्रोध पूर्वक पाताल से निकलकर मथुरा आने के लिये उद्यमी हुआ।

उस समय गरुडेन्द्र उसके निकट आया और पूछा कि— हे दैत्येन्द्र! कहाँ के लिये प्रस्थान कर रहे हो?

चमरेन्द्र ने कहा— जिसने मेरे परममित्र मधु को मारा है, उसे कष्ट देने जा रहा हूँ।

तब गरुडेन्द्र ने कहा— क्या विशल्या का माहात्म्य आप नहीं जानते? युद्ध में जब रावण की अमोघ शक्ति से लक्ष्मण जी मूर्च्छित हो गये थे, तब विशल्या के स्नान जल के प्रभाव से ही वह अमोघ शक्ति भाग गई थी, क्या यह आपने नहीं सुना है? (विशल्या लक्ष्मणजी की पटरानी थी।)

चमरेन्द्र बोला— विशल्या की वह अद्‌भुत शक्ति कौमार्यावस्था में ही थी, इस समय तो वह विषरहित नागिन समान हो गई है, जब तक उसने वासुदेव का आश्रय नहीं किया था तभी तक ब्रह्मचर्य के प्रसाद से उसमें असाधारण शक्ति थी, यद्यपि इस समय वह पवित्र है, किन्तु ब्रह्मचारिणी नहीं है, इसलिये अब उसमें वह शक्ति नहीं रही। मैं अपने मित्र मधु राजा के शत्रु से अवश्य बदला लूँगा। —ऐसा कहकर वह चमरेन्द्र मथुरा की ओर चल दिया।

मथुरा आकर चमरेन्द्र ने देखा कि यहाँ तो स्थान-स्थान पर उत्सव मनाया जा रहा है....जैसा उत्सव मधु राजा के समय में होता था, इस समय भी नगरजन वैसा ही मना रहे हैं। यह देखकर चमरेन्द्र ने विचार किया कि— अरे! यह प्रजाजन महादुष्ट एवं कृतघ्नी हैं। नगर का स्वामी पुत्र सहित मृत्यु को प्राप्त हुआ और दूसरे राजा ने उसके राज्य पर अधिकार कर लिया, फिर भी इन्हें शोक नहीं है, उल्टा हर्ष मना रहे हैं। जिसकी छत्र छाया में इतने समय तक सुख पूर्वक रहे, उस मधु राजा की मृत्यु से इन लोगों को क्यों दु:ख नहीं हुआ? यह लोग कृतघ्नी और मूर्ख हैं, इसलिये मैं इनका नाश कर दूँगा, अभी तत्काल ही समस्त मथुरा नगरी को नष्ट करता हूँ। —इसप्रकार वह असुरेन्द्र महाक्रोध पूर्वक मथुरा नगरी की प्रजा पर घोर उपसर्ग करने लगा। सारे नगर में भयंकर मरी व्याधि फैल गई....जो जहाँ खड़े थे वहीं खड़े-खड़े मरने लगे....जो बैठे थे वे बैठे-बैठे मृत्यु को प्राप्त हुए.....और सोने वाले सोते-सोते मर गये.....इस प्रकार उस भयंकर मरी के रोग से सारे नगर में हाहाकार मच गया और देवकृत उपसर्ग समझकर शत्रुघ्न भी अयोध्या लौट आये।

यद्यपि अयोध्या नगरी अति सुन्दर है, तथापि शत्रुघ्न का चित्त वहाँ नहीं लगता, उनका चित्त तो मथुरापुरी में ही अति-आसक्त है....जिस प्रकार सीता के बिना राम उदास रहते थे, उसी प्रकार मथुरा के बिना शत्रुघ्न भी उदास रहते हैं। यहाँ शास्त्रकार कहते

हैं कि— **''जीवों को इष्ट वस्तु का संयोग क्षणभंगुर होता है.....और उसका वियोग तीव्र दाह उत्पन्न करता है।''**

शत्रुघ्न ने किस कारण से मथुरा की माँग की? उन्हें अयोध्या की अपेक्षा मथुरा का निवास क्यों विशेष प्रिय लगा? स्वर्ग के

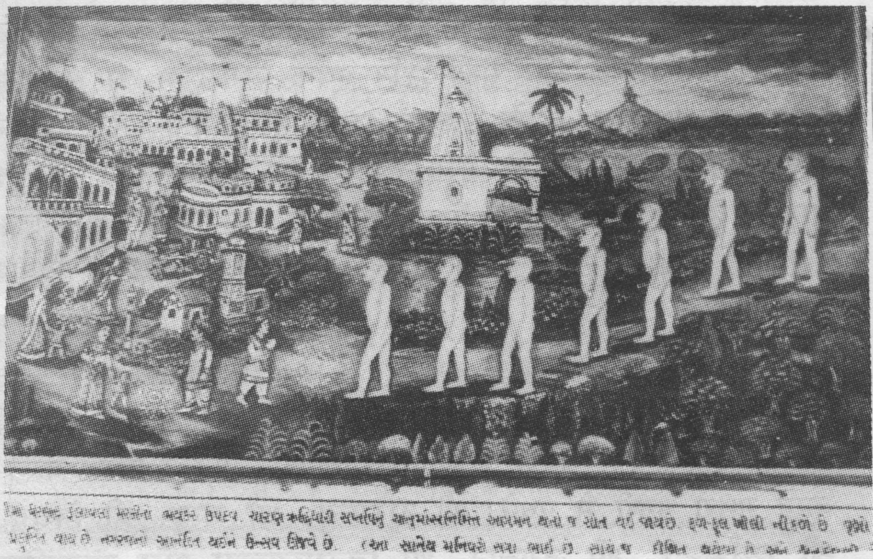

समान दूसरी अनेकों राजधानियाँ होने पर भी उनकी इच्छा न करके उन्होंने मथुरा की ही इच्छा क्यों की? मथुरा के प्रति शत्रुघ्न को इतनी अधिक प्रीति क्यों? उसके स्पष्टीकरण में शास्त्रकार कहते हैं कि— शत्रुघ्न के जीव ने पूर्वकाल में अनेकों भव मथुरा में (मधुपुरी में) धारण किये हैं, इसलिये उन्हें मथुरा के प्रति अधिक स्नेह है। शत्रुघ्न का जीव संसार में भवभ्रमण करते-करते एक बार मथुरा में यमन देव नाम का व्यक्ति हुआ। महाक्रूर धर्मविमुख परिणाम से मर कर उसने तिर्यंचगति में अनेकों भव धारण किये और फिर कुलंधर नाम का दुराचारी ब्राह्मण हुआ, वहाँ से तप करके स्वर्ग में गया, वहाँ से फिर मथुरा नगरी में चन्द्रप्रभा राजा का अचल नामक पुत्र हुआ।

एक बार अचल कुमार को जंगल में कांटा लग गया और वह अप कुमार नाम के पुरुष ने निकाला, इसलिये दोनों में मित्रता

हो गई। जब अलचकुमार ने अनेक देशों सहित मथुरा का राज्य प्राप्त किया, तब उसने अपने मित्र अपकुमार को उसकी जन्मभूमि श्रावस्ती नगरी का राज्य दिया और दोनों मित्र एक साथ अपना-अपना राज्य करने लगे।

एक दिन दोनों मित्रों ने यशसमुद्र आचार्य के निकट मुनिदीक्षा धारण की और सम्यग्दर्शन पूर्वक परमसंयम की आराधना पूर्वक समाधिमरण करके उत्कृष्ट देव हुए। वहाँ से च्यवकर अचलकुमार का जीव तो राजा दशरथ की सुप्रभा रानी का पुत्र शत्रुघ्न हुआ और उसके मित्र अपकुमार का जीव कृतान्तवक्र सेनापति हुआ। —इस कारण शत्रुघ्न को मथुरा नगरी से विशेष प्रीति थी।

इधर मथुरा नगरी में चमरेन्द्रकृत घोर मरी व्याधि का उपद्रव चल रहा था। उसी समय आकाश में गमन करने वाले और सूर्य समान तेजस्वी ऐसे चारण ऋद्धिधारी सात ऋषि-मुनिवर विहार करते-करते मथुरा नगरी में पधारे। **श्री सुरमन्यु, श्री मन्यु, श्री निचय, श्री सर्वसुन्दर, श्री जयवान, श्री विनयलालस और संजयमित्र नामक के सातों मुनिवर महाचारित्र के धारी और सगे भाई थे।**

वे श्री नन्दन राजा और धरिणी सुन्दरी रानी के पुत्र थे। प्रीतंकर स्वामी का केवलज्ञान देखकर वे सातों पुत्र पिता के साथ ही वैराग्य को प्राप्त हुए और मात्र एक महीने के तुंबरु नामक पुत्र को राज्य देकर पिता तथा सातों पुत्र प्रीतंकर स्वामी के निकट दीक्षा लेकर मुनि हुए।

श्रीनन्दन राजा तो केवली हुए और यह सातों पुत्र चारणऋद्धि आदि अनेक ऋद्धियों के धारी श्रुतकेवली हुए। वे गगनविहारी सप्तर्षि श्रुतकेवली भगवन्त पृथ्वी को पावन करते-करते मथुरा पुरी में पधारे और चातुर्मास के लिये मथुरा के वन में एक वटवृक्ष के नीचे विराजमान हुए।

सप्तर्षिमुनि भगवन्तों का पुनीत पदार्पण होते ही उनके तप के प्रभाव से चमरेन्द्र द्वारा फैलाया गया मरी का घोर उपसर्ग एकदम शांत हो गया तथा समस्त मथुरा नगरी सुखरूप हो गई। **जिसप्रकार सूर्य का आगमन होने से अंधकार भाग जाता है, उसीप्रकार सप्तर्षि मुनिवरों का आगमन होते ही उनके प्रताप से मरी रोग का घोर उपद्रव दूर हो गया तथा सारे नगर में शांति छा गई।** फल फूल खिल गये, वृक्ष और बेलें लहलहा उठीं, बिना बोये धान्य उगने लगे, समस्त रोग रहित मथुरापुरी अति शोभायमान हो गई और नगरजनों ने महा आनन्द पूर्वक सातों मुनिवरों के दर्शन-पूजन किये।

(सप्तर्षि मुनिवरों के आगमन का यह आनन्दमय प्रसंग आज भी मथुरा नगरी के जिनमन्दिर में अंकित है। जिनके दर्शन करते भक्तों के हृदय में आनन्द की ऊर्मि जागृत हुए बिना नहीं रहती। मथुरा में "सप्तर्षि टीला" नाम का एक स्थान भी है।)

उन सप्तर्षि मुनि-भगवन्तों को हमारा नमस्कार हो।

कर्ता जगत का मानता हो, 'कर्म या भगवान को'।
वह भूलता है लोक में, अस्तित्व गुण के ज्ञान को।।
उत्पाद-व्यय-युत वस्तु है, फिर भी सदा ध्रुवता धरे।
अस्तित्व गुण के योग से, कोई नहीं जग में मरे।।

वस्तुत्व गुण के योग से, हो द्रव्य में स्व-स्वक्रिया।
स्वाधीन गुण-पर्याय का ही, पान द्रव्यों ने किया।।
सामान्य और विशेष से, कर रहे निज निज काम को।
यों मानकर वस्तुत्व को, पाओ विमल शिवधाम को।।

द्रव्यत्वगुण इस वस्तु को, जग में पलटता है सदा।
लेकिन कभी भी द्रव्य तो, तजता न लक्षण संपदा।।
स्व-द्रव्य में मोक्षार्थी हो, स्वाधीन सुख लो सर्वदा।
हो नाश जिससे आज तक की, दुःखदायी भवकथा।।

ACHARYA SHRI KAILASSAGARSURI GYANMANDIR

४

मथुरा में चातुर्मास और अयोध्या में आहार

एक समय की बात है कि श्री सुरमन्यु आदि सप्त ऋद्धि धारी महा मुनिराज मथुरा नगरी के वन में चातुर्मास हेतु ठहरे हुए थे। चारणऋद्धि के प्रभाव से उन महा मुनिराजों को चातुर्मास में भी गमन सम्बन्धी दोष नहीं लगता था; अत: वे कभी किसी नगर में, वे कभी किसी नगर में जाते, वहाँ के मन्दिरों की वन्दना करते, योग मिलने पर वहीं आहार करते। आकाश मार्ग से क्षणमात्र में कभी पोदनपुर पहुँचकर आहार लेते, तो कभी विजयपुर जाते, कभी उज्जैन तो कभी सौराष्ट्र में पधारते। (चारण ऋद्धिधारी मुनिवर आकाश में विचरते हैं और चातुर्मास में भी विहार करते हैं।) इस प्रकार किसी भी नगरी में जाकर उत्तम श्रावक के यहाँ आहार लेते हैं और फिर मथुरा नगरी में आ जाते हैं। वे धीर-वीर महाशांत मुनिवर एकबार आहार के समय अयोध्या नगरी में पधारे और अर्हद्दत्त सेठ के भवन के निकट पहुँचे।

अचानक उन मुनिवरों को देखकर अर्हद्दत्त सेठ ने विचार किया कि— "अरे! मुनि तो चातुर्मास में विहार करते नहीं हैं और यह मुनि यहाँ कैसे आ पहुँचे? चातुर्मास के पूर्व तो यह मुनि यहाँ आये नहीं थे। अयोध्या के आस-पास वन में, गुफ़ाओं में, नदी किनारे, वृक्षों के नीचे या वन के चैत्यालयों में जहाँ-जहाँ मुनि चातुर्मास कर रहे हैं, उन सबकी वन्दना मैं कर चुका हूँ, किन्तु इन साधुओं को मैंने कभी नहीं देखा, यह मुनि आचारांग सूत्र की आज्ञा से परांगमुख स्वेच्छाचारी मालूम होते हैं, इसीलिये तो वर्षा काल में जहाँ-तहाँ घूम रहे हैं। यदि जिनाज्ञा के पालक होते तो वर्षा काल में विहार कैसे करते? इसलिये यह मुनि जिनाज्ञा से

बाहर हैं।'' — ऐसा सोचकर अर्हदत्त सेठ ने मुनियों का सत्कार नहीं किया और वहाँ से चले गये; किन्तु उनकी पुत्रवधू ने अत्यन्त भक्ति से विधिपूर्वक मुनियों को आहारदान दिया।

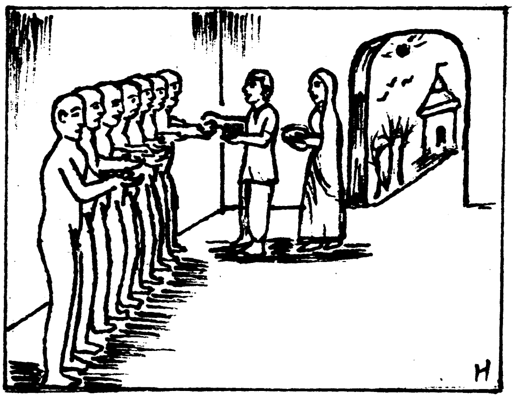

आहार ग्रहण करके सातों मुनिवर भगवान के चैत्यालय में आये, जहाँ द्युतिभट्टारक आचार्य विराजमान थे। सातों ऋषि-मुनिवर ऋद्धि के प्रभाव से चार अंगुल ऊपर अलिप्तरूप से अर्थात् धरती से चार अंगुल ऊपर चले आ रहे थे, चैत्यालय में आकर उन्होंने धरती पर चरण रखे। उन सप्तर्षि भगवन्तों को देखते ही द्युतिभट्टारक आचार्य खड़े हुए और अत्यन्त आदरपूर्वक उन्हें नमस्कार किया। अन्य शिष्यों ने भी नमस्कार किया। सप्तर्षि भगवन्तों ने उनसे धर्मचर्चा की और फिर चैत्यालय में जिनवन्दना करके वे मथुरा नगरी लौट आये।

सप्तर्षि मुनिवरों के जाने पर कुछ ही समय पश्चात् अर्हदत्त सेठ चैत्यालय में आये, तब द्युतिभट्टारक आचार्य ने उनसे कहा कि— ''सात महर्षि महायोगीश्वर चारण मुनि यहाँ पधारे थे, तुमने भी उनके दर्शन अवश्य किये होंगे, वे मुनिवर महातप के धारक हैं और मथुरा नगरी में चातुर्मास कर रहे हैं। चारणऋद्धि से गगनविहार करके आहार के लिये चाहे जहाँ चले जाते हैं। आज उन्होंने अयोध्यापुरी में आहार लिया और फिर चैत्यालय की वंदना के हेतु यहां पधारे। हमारे साथ धर्मचर्चा भी की और फिर मथुरा नगरी लौट गये। वे महावीतरागी गगनगामी, परम उदारचेष्टा के धारक मुनिवर वंदनीय हैं।'' इत्यादि प्रकार से आचार्य के मुख से

चारण मुनियों की महिमा सुनकर, श्रावक शिरोमणि अर्हदत्त सेठ खेदखिन्न होकर खूब पश्चाताप करने लगे कि—

"अरे! मुझे धिक्कार है... मैं मुनिवरों को नहीं पहिचान सका। अपने आँगन में आये हुए मुनि भगवन्तों का मैंने आदर-सत्कार नहीं किया...हाय! मुझ जैसा अधम कौन होगा? वे मुनिवर आहार के हेतु मेरे ऑगन में पधारे, किन्तु मैंने उन्हें नवधाभक्ति पूर्वक आहार दान नहीं दिया....मुझ जैसा पामर अज्ञानी दूसरा कौन होगा कि मैं आंगन में आये हुए संतो को नहीं पहिचान सका, चारण मुनिवरों की तो रीति यही है कि चातुर्मास में निवास तो एक स्थान पर करें और आहार किसी भी नगर में जाकर लें। चारणऋद्धि के प्रभाव से उनके शरीर द्वारा जीवों को बाधा नहीं पहुँचती। अहा! जबतक मैं उन चारणऋद्धि धारी मुनिभगवन्तों के दर्शन नहीं करूँगा, तबतक मेरे मन का संताप नहीं मिट सकता।"— इसप्रकार पश्चाताप पूर्वक अत्यन्त भक्तिपूर्वक चित्त से अर्हदत्त सेठ सातों मुनिवरों के दर्शन की कामना करने लगे।

कार्तिक पूर्णिमा निकट आते ही सम्यग्दृष्टि अर्हदत्त सेठ ने समस्त परिवार सहित सप्तर्षि मुनिवरों की वन्दना-पूजा के लिये अयोध्या से मथुरा की ओर प्रयाण किया। जिन्होंने मुनिवरों की अपार महिमा को जाना है, राजा के समान जिनका वैभव है— ऐसे अर्हदत्त सेठ बारम्बार अपनी निन्दा और मुनिवरों की प्रशंसा करते हुए रथ, हाथी, घुड़सवार और पैदलों की विशाल सेनासहित योगीश्वरों की पूजा के लिये मथुरा की ओर चल पड़े। महाविभूतिसहित और शुभध्यान में तत्पर अर्हदत्त सेठ कार्तिक शुक्ला सप्तमी के दिन मुनिवरों के चरणों में आ पहुँचे। उन धर्मात्मा ने विधिपूर्वक सप्तर्षि मुनिवरों की वंदना एवं पूजा की तथा मथुरा नगरी को अनेक प्रकार से सजाया। मथुरा नगरी स्वर्ग के समान सुशोभित हो गई।

यह सब वृतान्त सुनकर शत्रुघ्न कुमार भी तुरन्त सप्तर्षि मुनिवरों के समीप आ पहुचे और उनकी माता सुप्रभा भी मुनिभक्ति

से प्रेरित हो उनके साथ आई। शत्रुघ्न ने अत्यन्त भक्तिपूर्वक मुनिवरों से धर्म का श्रवण किया।

मुनिवरों ने कहा— **"यह संसार असार है, एक वीतरागता ही सारभूत है। जिनदेव द्वारा कहा गया वीतराग मार्ग ही जगत के जीवों को शरणभूत है। जिनधर्म के अनुसार उसकी आराधना करो।"**

उपदेश सुनकर शत्रुघ्न कुमार विनय से कहने लगे कि—"हे देव! आपके पदार्पण से मथुरा नगरी का महान उपसर्ग मरी रोग दूर हुआ, दुर्भिक्ष गया और सुभिक्ष का आगमन हुआ, सर्व जीवों को शांति एवं धर्मवृद्धि हुई, इसलिये हे प्रभो! कृपा करके आप कुछ दिनों तक यहीं विराजें।"

तब श्री मुनिराज ने कहा कि हे शत्रुघ्न! जिन-आज्ञा के अनुसार अधिक समय तक रहना योग्य नहीं है, अब हमारे चातुर्मास का क़ाल पूर्ण हुआ.....मुनि तो अप्रतिबद्ध-विहारी होते हैं, यह चौथा काल धर्म के उद्योत का है, इसमें अनेक जीव मुनिधर्म धारण करते हैं, जिन-आज्ञा का पालन करते हैं और महामुनि केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष जाते हैं। बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ तो मोक्ष पधारे, अब इस भरत क्षेत्र में नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्द्धमान —यह चार तीर्थंकर होंगे।

हे भव्य! जिनशासन के प्रभाव से मथुरा नगरी का उपद्रव दूर हो गया है, अब मथुरा के समस्त निवासियों को जिनधर्म में तत्पर होना, दया पालन करना, साधर्मियों के प्रति वात्सल्य एवं जिनशासन की प्रभावना करना घर-घर में जिनबिम्बों की स्थापना, जिनपूजन तथा अभिषेक की प्रवृत्ति करना चाहिए उससे सर्वत्र शांति होगी। जो जिनधर्म की आराधना नहीं करेगा, उसी पर आपदा आयेगी; किन्तु जो जिनधर्म का आराधन करेंगे, उनसे तो आपदा ऐसी भागेगी, जिसप्रकार गरुड़ को देखकर नागिन भागती है। इसलिये जिनधर्म की आराधना में सर्व प्रकार से तत्पर रहना.... "

शत्रुघ्न ने कहा, "प्रभो! आपकी आज्ञानुसार समस्त प्रजा धर्माराधन में प्रवृत्त होगी।"

तत्पश्चात् मुनिवर तो आकाश मार्ग से विहार कर गये और अनेक निर्वाण भूमियों की वन्दना करके अयोध्या नगरी में पधारे, वहां सीताजी के घर आहार किया। सीताजी ने महा हर्ष पूर्वक श्रद्धादि गुणों सहित मुनिवरों को प्रासुक आहार दिया।

इधर शत्रुघ्न ने मथुरा नगरी के बाहर तथा भीतर अनेक जिनमंदिरों का निर्माण कराया, घर-घर में जिनबिम्बों की स्थापना कराई और धर्म का महान उत्सव किया। समस्त नगरी उपद्रव रहित हो गई। वन-उपवन फल-फूलों से शोभायमान हो उठे, सरोवरों में कमल खिल गये और भव्यजीवों के हृदय कमल प्रफुल्लित होकर धर्माराधना में तत्पर हुए। इसप्रकार सप्तर्षि मुनिभगवन्तों के प्रताप से मथुरा नगरी का उपद्रव दूर हो गया और महान धर्मप्रभावना हुई।

कथा के अन्त में शास्त्रकार कहते हैं कि जो जीव इस अध्याय को पढ़ेंगे, सुनेंगे तथा साधुओं की भक्ति में अनुरागी होकर मुनिवरों का समागम चाहेंगे, उन जीवों को मनवांछित फल की प्राप्ति होगी अर्थात् वे साधुओं की संगति पाकर धर्माराधन द्वारा परमपद को प्राप्त करेंगे।

पर्वत से भी अधिक अचल

श्री शैल मुनिराज शैलेश (पर्वत) से भी अधिक अचल रूप से चरित्र का पालन करने लगे। उनका अद्भुत वीतरागी चारित्र देखकर इन्द्र भी उनको नमस्कार करके उनकी प्रशंसा करते थे। राम-लक्ष्मण ने भी उनको वंदन किया। हनुमान वीर तो थे ही, शुक्लध्यान के चक्र द्वारा महा-वीर बनकर उनने सर्वज्ञ पद साधा और केवलज्ञान के अहिंसक शस्त्र द्वारा समस्त लोकालोक को वश कर लिया अर्थात् जान लिया। फिर अरिहंत पद में आकाश मार्ग में विहार करते-करते मांगी-तुंगी पधारे और वहाँ के तुंगीभद्र गिरि-शिखर से मोक्षदशा प्रगट करके सिद्धपद को पाया। अभी भी वह मुक्तात्मा अपने परम ज्ञान-आनन्द सहित बराबर तुंगीभद्र के ऊपर समश्रेणि में, लोकाग्र में, सिद्धालय में, अनन्त सिद्ध भगवंतों के साथ विराज रहे हैं, उनको हमारा नमस्कार हो।

५

आपस में धर्मचर्चा

राजगृही राज्य में राजा श्रेणिक राज्य करते थे। एक दिन राजा श्रेणिक की महारानी चेलना अत्यन्त बैचेन एवं उदास बैठी हुई थी। तभी उनके होनहार पुत्र अभयकुमार वहां आ पहुंचे और माता को उदास देख कर कहने लगे कि– हे माता! आप इसप्रकार उदास क्यों बैठी हो? आओ हमें इस

उदासी को भूल कर कुछ धार्मिक चर्चा करना चाहिये। जिससे मन में प्रसन्नता होती है। यह सुनकर रानी चेलना भी प्रसन्नता पूर्वक कहती है कि–

हां बेटा! तेरी बात सच्ची है, दुखं संकट में धर्म ही एक मात्र शरण होता है —ऐसा कह कर वे माता और पुत्र आपस में धर्मचर्चा करने लगे। उस चर्चा का संक्षिप्त सारांश यहां दिया जा रहा है, जिसे पढ़कर धर्म जिज्ञासुओं को अवश्य ही सुख दायक सच्चा मार्ग मिलेगा।

अभयकुमार– माता! अपने जैसे धर्मात्माओं पर भी ऐसा संकट क्यों आता है?

चेलना– पुत्र ! जिन्होंने पूर्वभव में सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की

विराधना की है, उन्हें ही ऐसी प्रतिकूलताओं का प्रसंग बनता है।

अभयकुमार– हे माता! प्रतिकूल संयोगों में भी जीव धर्म कर सकता है क्या?

चेलना– हां बेटा! चाहे जैसे प्रतिकूल संयोग होने पर भी जीव धर्म कर सकता है, कोई भी बाह्य संयोग जीव को धर्म करने से नहीं रोकता।

अभयकुमार– परन्तु अनुकूल संयोग धर्म करने में सहायक तो होता है न?

चेलना– नहीं! धर्म तो आत्मा के आधार से होता है, पर के आधार से, संयोग के आधार से नहीं। संयोग का तो आत्मा में अभाव है। हाँ यह बात सत्य है कि जिनके हृदय में धर्म होता है, उन्हें जगत की प्रत्येक स्थिति में साम्यभाव होता है।

अभयकुमार– तब फिर बाह्य में अनुकूल और प्रतिकूल संयोग क्यों मिलते हैं?

चेलना– बाह्य में अनुकूल और प्रतिकूल संयोग तो जीव द्वारा पूर्वभव में किये हुए पुण्य-पाप के भावों के कारण होते हैं। पुण्य के फल में अनुकूल संयोग मिलते हैं और पाप के फल में प्रतिकूल संयोग मिलते हैं; परन्तु धर्म तो – इन दोनों से भिन्न अलौकिक वस्तु है।

अभयकुमार– माताजी ! इस विचित्र संसार में कभी-कभी व कहीं-कहीं अधर्मी जीव भी सुखी दिखाई देते हैं और धर्मी जीव दुखी दिखाई देते हैं –इसका क्या कारण है?

चेलना– बेटा! अज्ञानी जीवों को सच्चा सुख तो कभी होता ही नहीं है। आत्मा का अतीन्द्रिय सुख ही सच्चा सुख है और यह अतीन्द्रिय सुख तो ज्ञानियों के ही होता है, अज्ञानी के तो इस अतीन्द्रिय सुख की गन्ध भी नहीं होती। अधर्मी जीवों के जो सुख दिखाई देता है वह वास्तव में सुख नहीं है; परन्तु सुख की कल्पना मात्र है। अज्ञानी

जीवों के पूर्व पुण्य के उदय से भले ही बाह्य में अनुकूलता दिखाई देती हो, परन्तु वास्तव में तो वे दुखी ही हैं और ज्ञानी जीवों के कदाचित् पूर्व पाप के उदय से बाह्य में प्रतिकूलता भी दिखाई देती हो, तो भी वास्तव में वे सुखी ही हैं।

अभयकुमार– माता! प्रतिकूलताओं के कारण क्या ज्ञानी की श्रद्धा विचलित नहीं होती?

चेलना– नहीं, बिल्कुल नहीं! बाह्य में चाहे जितनी प्रतिकूलता हो, तो भी सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा का सम्यक्श्रद्धान वा सम्यग्ज्ञान किंचित् भी विचलित नहीं होता, दूषित नहीं होता। अरे, तीन लोक में खलबली मच जाय तो भी समकिती अपने स्वरूप की श्रद्धा से किंचित् भी नहीं डिगता।

अभयकुमार– अहो माता! धन्य हैं –ऐसे समकिती जीव –ऐसे सुखिया समकिती जीवों का अतीन्द्रिय आनन्द कैसा होता होगा?

चेलना– अहो, पुत्र अभय! उसकी क्या बात करें? जैसा आनन्द सिद्ध भगवान को होता है, जैसा आनन्द मुनिवरों को होता है, वैसा ही आनन्द समकिती जीवों को होता है। समकिती जीवों ने भी उस आनन्द का स्वाद चख लिया है। केवली और समकिती जीव के सुख में मात्र मात्रा भेद होता है, जाति भेद नहीं।

अभयकुमार– माता! आप मुझे भी ऐसे अपूर्व सम्यग्दर्शन को प्रकट करने की विधि समझाइये?

चेलना– पुत्र! तुमने यह बहुत ही अच्छा प्रश्न पूछा है। सुनो, सबसे पहले तो अन्तर में अपने आत्मा को प्राप्त करने की तीव्र जिज्ञासा प्रगट होनी चाहिए। और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के समागम से तत्त्वों का यथार्थ निर्णय करना चाहिये... तत्पश्चात निरन्तर अन्तर में आत्मस्वभाव के चिंतन और मंथन पूर्वक भेदज्ञान का अभ्यास करना चाहिये। बारम्बार ऐसे भेद-विज्ञान का अभ्यास करते-करते जब आत्म स्वभाव की उत्कृष्टतम महिमा भासित होती

है, तब निर्विकल्प अनुभव होता है, और उस अनुभव में सिद्ध भगवान के समान अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन होता है।

पुत्र! यही सम्यग्दर्शन प्राप्त करने/प्रगट करने की विधि है। इसकी महिमा अपार है।

अभयकुमार– अहो माता! आपने सम्यग्दर्शन की महिमा और उसको प्राप्त करने का उपाय समझा कर हमारे ऊपर महान कृपा की है। आप धन्य हैं।

निज को निज-चैतन्यचिन्ह से पहिचान!

गोसलिया नाम का एक वणिक पुत्र एक छोटे से ग्राम में रहता था। वह अत्यन्त भोला-भाला था, एक बार वह किसी बड़े शहर में समान खरीदने गया.....शहर की भीड़ में उसे ऐसी भ्रमणा हो गई कि "मैं इस भीड़ में खो गया हूँ", इसलिये शहर में चारों ओर घूम-घूमकर स्वयं अपने आप को ढूँढ़ने लगा.... इसी प्रकार यह भोला अज्ञानी जीव स्वयं अपने स्वरूप को भूलकर अपने को बाह्य में ढूँढ़ता है।

ज्ञानी समझाते हैं कि अरे भाई! तेरा आनन्द तुझमें भरा है, तू कहीं खो नहीं गया है। तू स्वयं ज्ञान-आनन्दस्वरूप आत्मा है, किन्तु भ्रमणा से स्वयं अपने को भूलकर संसार में भटक रहा है, इसलिये **अपने आत्मा को तू चैतन्य-चिन्ह द्वारा पहिचान।**

इस मनुष्य भव को पाकर जीवों को आत्मा का स्वरूप समझने के लिये अवकाश नहीं मिलता। यह शरीर तो आज है और कल नहीं है, शरीर सदैव रहने वाला नहीं है; इसलिये जैसे आत्मा का हित हो– वही कर लेने योग्य है।

इसलिये देह से भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप आत्म-वस्तु का भान करना चाहिये। आत्मा के भान बिना जीव ने सब कुछ किया, किन्तु उसके परिभ्रमण का अन्त नहीं आया। इसलिये हे जीव! यदि आत्मा का भान करे तो तेरे भव भ्रमण का अंत आये और तुम्हारी मुक्ति हो।

६

कर्म को कृश करे सो कृष्ण

अपनी सम्यक् श्रद्धा-ज्ञानमूलक अन्तर्मुख शूरवीरता के द्वारा सर्व प्रतिकूलता या अनुकूलता में भी जिसका निज भगवान आत्मा केवल ज्ञाता-दृष्टा रूप परिणमन करे, वह जीव प्रत्याख्यान के योग्य है, कायर प्रत्याख्यान के योग्य नहीं है। वीरता के लिये शास्त्र में श्री कृष्ण का दृष्टान्त आता है।

एक बार धातकीखंड द्वीप का पद्मनाभ राजा द्रौपदी का अपहरण कर ले गया था। तब पांडवों ने काफी तलाश की, फिर भी द्रौपदी का कुछ पता न चला।

कृष्णजी ने नारद से पूछा— द्रौपदी को तुमने कहीं देखा है?

नारद ने उत्तर दिया— हाँ, मैं धातकी खंड में गया था, वहा राजा पद्मनाभ के महल में द्रौपदी जैसी किसी महिला को देखा था। कृष्णजी तुरन्त समझ गये कि यह सारा तूफान नारद का ही है। नाटक में भी नारद अपने मुख से कहता है न! — ब्रह्मासुत मैं नारद कहाऊं, जहाँ हो संप वहाँ कुसंप कराऊं।''

श्री कृष्ण ने पांचो पांडवों को कहा—चलो, हम छहों द्रौपदी को लेने चलें। देव को लवणसमुद्र में रास्ता करने को कहा।

देव ने कहा— प्रभो! आज्ञा हो तो मैं अकेला ही द्रौपदी को ला दूं।

श्रीकृष्ण ने कहा— नहीं, नहीं; यदि देव ला दे तो फिर हम वासुदेव कैसे? श्रीकृष्ण ने देव के अनुरोध को स्वीकार नहीं किया और स्वयं पांडवों को साथ लेकर धातकीखंड द्वीप में पहुँच गये।

पद्मनाभ राजा को आदेश कहलाया—या तो आकर हमारी विनय करो, या फिर लड़ाई के लिए तैयार रहो।

राजा ने अपने सेनापति से पूछा— वे लोग कितने हैं? सेनापति के यह बताने पर कि वे मात्र छह व्यक्ति ही हैं, पद्मनाभ ने मन ही मन सोचा मेरी कि सेना तो बहुत बड़ी है, सिर्फ छह को परास्त करने में कौन सी कठिनाई है? उसने सेनापति को लड़ाई करने का आदेश दिया।

महाबलशाली श्रीकृष्ण ने पांडवों से कहा—लड़ने के लिये प्रथम तुम जाते हो कि मैं जाऊँ?

पांडवों ने कहा— हम जाते हैं और आज की लड़ाई में या तो हम नहीं, या पद्मनाभ नहीं।

कृष्णजी बोले— अरे पांडव! क्या कहते हो? तुम्हारी बात में "या तो हम नहीं, या वह नहीं" यह जो वाक्य आया इसमें" "हम नहीं" ऐसे अपशकुन-सूचक .... शब्द पहले आये, अतः तुम नहीं जीत सकोगे। अतः लड़ने के लिये मैं जाऊगा और आज मैं हूँ और पद्मनाभ नहीं। अन्दर से असाधारण पुण्य और सातिशय वीरता की पुकार थी।

इसी प्रकार जो अपने पुरुषार्थ को अन्तर्मुख प्रेरित करता है वही सच्चा वीर है। अपने वीर्य को स्फुरित करने में जो कायर है उसे ही ऐसी शंका हुआ करती है कि कर्म का उदय उग्र आयेगा तो?

अरे मूढ़! तू प्रत्याख्यान के/चारित्र के लायक नही है। यह **कायरों का काम नहीं। यह तो अपनी वीरता द्वारा जिसने अन्तर में प्रगट किया हो, पांच इन्द्रियों के व्यापार का शमन कर अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट किया हो वह शूरवीर है, उसे ही सुखमय प्रत्याख्यान होता है।**

कृष्ण अकेले गये। उनके शंखनाद से सारी सेना भय से कांप उठी, धनुष-टंकार से सारी सेना भयभीत होकर छिन्न-भिन्न होकर भागने लगी। अपनी बलवती सेना की दुर्दशा देखकर, पद्मनाभ को शंका हुई, कौन हैं ये?

अरे! ये तो भरतक्षेत्र के त्रिखंडाधिपति श्रीकृष्ण वासुदेव हैं। ये हमको नहीं छोडेंगे! भय के मारे वह द्रौपदी के चरणों में लेट गया और प्रार्थना की— हे देवी! मुझे बचाओ।

द्रौपदी ने कहा— कृष्णजी से बचने का एक ही उपाय है। आप वस्त्र एवं चूड़ी परिधान धारण करो और मेरे पीछे-पीछे कृष्णजी के पास दासत्वभाव से चले आओ। मेरे भाई कृष्णजी अबला पर हाथ कभी नहीं उठाते। पद्मनाभ ने ऐसा ही किया। फिर कभी ऐसा दुष्कर्म मत करना कहकर कृष्ण ने पद्मनाभ को छोड़ दिया और द्रौपदी को लेकर पांडवों के साथ वापस आ गये।

प्रथमानुयोग के वीरतापूर्ण इस दृष्टान्त से यह सिद्धान्त प्रतिफलित होता है कि— अन्तर से जागृत हुआ यह भगवान आत्मा अपनी अतीन्द्रिय वीरता—अन्तर्मुख पुरुषार्थ से पुकारता है कि मैं राग को तोड़कर वीतरागता लूंगा। स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई यह साधना वीरता से—शूरवीरता से प्रतापवन्त है। जिसे वीरता की अन्तर्ध्वनि उठी वह मोहशत्रु को जीतकर ही आयेगा। यह अन्तर्मुख साधना तो वीरों का मार्ग है। वीर के मार्ग में शुद्धात्माभिमुखी वीरता ही प्रत्याख्यान का कारण है। कर्मशत्रु को कृश करे सो कृष्ण। वीरता का शंखनाद किया, विकल्पों की सेना छिन्न-भिन्न हो गई, अकेला ज्ञायक आत्मा अपनी वीरतापूर्ण शोभा से प्रदीप्त हो उठा। सचमुच ऐसी वीरता से सुशोभित आत्मा ही प्रत्याख्यान के लायक है।

वीर किसे कहते हैं?

जो अपने त्रिकाली ध्रुव ज्ञायक द्रव्यस्वभाव के प्रति वीर्य को प्रेरित करे, उसे वीर कहते हैं।

स्वभाव उपादेय है, विभाव हेय है; संयोग ज्ञेय है।

उपादेय, हेय और ज्ञेय –इन तीनों को जानकर उपादेय रूप स्वभाव का आश्रय करने पर निर्मलता प्रगट हो जाती है और हेय रूप विभाव दशा छूट जाती है तथा ज्ञान-सामर्थ्य में सम्पूर्ण ज्ञेय झलकने लगते हैं।

७

अकम्पनाचार्य की अडिगता..
विष्णुकुमार की वात्सल्यता

निर्दोष वात्सल्य का प्रतीक रक्षाबन्धन का पर्व जैनों का एक महान ऐतिहासिक पर्व है। ७०० मुनिवरों की रक्षा का और धर्म रक्षण की महान वात्सल्य भावना का प्रसंग इस पर्व के साथ जुड़ा हुआ है। यह प्रसंग हस्तिनापुर में बना था।

जब अकम्पानाचार्य ७०० मुनियों के संघ सहित उज्जैन नगरी में पधारे, तब दुष्ट मन्त्रियों के साथा राजा उनकी वन्दना करने गया। अवसर का विचार कर आचार्य श्री ने संघ को मौन धारण करने का आदेश दिया। इसमें संघरक्षा का वात्सल्य दिखलाई देता है।

दो मुनियों ने, जो बाहर रह गये थे और जिन्हें आचार्य

की आज्ञा का ज्ञान नहीं था, मन्त्रियों को वाद-विवाद में चुप कर दिया, जिससे वे ईर्षावान मन्त्री रात्रि को मुनियों पर प्रहार करने के लिये ज्यों ही तैयार होते हैं, त्यों ही जैनधर्म का भक्त यक्षदेव उनकी रक्षा करके भक्ति द्वारा वात्सल्य प्रगट करता है।

मंत्रियों द्वारा इस घोर अपराध की खबर जब राजा के पास पहुँची, तो राजा ने उन्हें अपने राज्य से निकाल दिया। इधर विहार करता हुआ इन ७०० मुनियों का संघ हस्तिनापुर में आता है और वे अपमानित हुए मन्त्री (बलि राजा वगैरह) भी हस्तिनापुर पहुँच कर राज्य कर्मचारी बन जाते हैं, तथा राजा को प्रसन्न करके राजा से ७ दिन को राज्य लेकर पूरे मुनिसंघ पर घोर उपद्रव/घोर उपसर्ग करने लगे, जबतक यह उपसर्ग दूर नं हो, तबतक अन्न जल का त्याग कर हस्तिनापुर के श्रावकजन धर्मात्माओं के प्रति महान वत्सलता और परमभक्ति व्यक्त करते हैं। दूसरी ओर मिथिलापुरी में आचार्य श्रुतसागर भी मुनिवरों के ऊपर होते हुए उपसर्ग को देखकर नहीं रह पाते और तीव्रवत्सलता के कारण उनका मौन टूट कर 'हा'....ऐसा उद्‌गार उनके मुंह से निकल जाता है।

महान ऋद्धिधारक मुनिराज विष्णुकुमार सब बातें जानकर वात्सल्यभाव से प्रेरित होते हैं और युक्ति पूर्वक ७००मुनिवरों का रक्षा करते हैं........हस्तिनापुर में जय-जयकार की मंगल ध्वनि होती है.......बलिराजा भी माफी मांगकर जैनधर्म का श्रद्धालु बनता है। विष्णुकुमार पुनः मुनि होकर केवलज्ञान प्राप्त करते हैं।

यह वात्सल्य का पावन दिवस श्रावण सुदी पूनम का था।

देव-शास्त्र-गुरु को नमूँ, नमूँ दिगम्बर धर्म।
वीतरागता हो प्रगट, सहज मिले शिवशर्म।।

पंच परम पद विश्व में, आगम के अनुसार।
उनकी श्रद्धा-भक्ति से, करूं भवोदधि पार।।

८

सिद्ध भगवान की आत्मकथा

सिद्ध भगवान के आत्मा का विचार करने से जो उनकी आत्मकथा का मुझे ज्ञान हुआ, उसका विवरण यहाँ द्रष्टव्य है।

यह जीव अनादिकाल से निगोद दशा में ही अनन्तानन्त दु:ख सहता हुआ उसी में जन्म-मरण करता था। अहा! उसके अपार दु:खों को तो केवलज्ञानी ही जानते है, वहाँ निगोददशा में एक शरीर में अनन्त जीव रहते हैं और उनको एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है, उसके ज्ञान का क्षयोपशम भी अत्यन्त अल्प होता है। वे प्रचुर मोहावेश से घिरे रहते हैं। एक श्वासोच्छवास में अठारह बार जन्म-मरण करते हैं।

ऐसे अपार दु:खों को सहन करते हुए उस जीव ने एकबार कुछ मंद-कषायरूप परिणामों से मरण करके एक सुप्रसिद्ध सेठ के घर पुत्ररूप में जन्म लिया।

वे सेठजी सम्पत्तिशाली तो थे ही, साथ में उनके हृदय में धर्मभावना भी प्रबल थी, वे वीतराग धर्म के अनन्य भक्त थे। बड़े भारी व्यापार के काम काज में पड़े होने पर भी सेठजी के हृदय में सदा ही आत्महित की कामना रहती थी। वे प्रतिदिन नियमित देवदर्शन, शास्त्र-स्वाध्याय तथा मुनिराज के चरणकमलों के निकट भक्तिपूर्वक देशना श्रवण करना नहीं चूकते थे। सेठजी ने नगर में अनेक जिनमन्दिर बनवाये थे और उनके घर में भी एक भव्य जिनमन्दिर था। सेठजी वास्तव में एक श्रेष्ठ आत्मार्थी जीव थे, सेठजी की भाँति उनकी पत्नी और सारा परिवार भी संस्कार और धर्मभावनामय था।

ऐसे सेठजी के घर में उस जीव ने पुत्ररूप में जन्म लिया। जो इसी भव से सिद्धदशा प्राप्त करने वाला है। पुत्र जन्म का सेठजी ने एक महोत्सव किया, जिनमन्दिर में अनेक प्रकार के विधान-पूजन हुए और अनेक प्रकार के दान की घोषणा की, सारे नगर में गरीब लोगों को मिष्ठान और वस्त्रादि बाँटे गये। सेठजी ने पुत्र का नाम 'सिद्धकुमार' रखा।

'सिद्धकुमार' का बचपन बड़े ही लाड़-प्यार में बीतने लगा। सेठजी जब जिनमन्दिर में पूजा, स्वाध्याय, ध्यान करते तब बालक सिद्धकुमार अपने पिता के निकट जाकर बैठ जाता और जिनप्रतिमा के सन्मुख एकटक देखता रहता। सिद्धकुमार की सौम्य सुन्दर मुखाकृति और शांत प्रकृति देखकर लोग आश्चर्यचकित हुये बिना न रहते। जब सिद्धकुमार पाँच बरस का हुआ तो सेठजी ने उसके लौकिक और धार्मिक शिक्षण की व्यवस्था की और सिद्धकुमार दिन-प्रतिदिन उसमें आगे बढ़ने लगा।

एक बार शहर में एक वीतरागी मुनि आहार लेने पधारे। सेठजी ने मुनिराज की पड़गाहना की। महाभाग्य से सेठजी को आहारदान का शुभ-अवसर प्राप्त हुआ। आहार की विधि समाप्त होने के पश्चात् मुनिराज के चरणों का स्पर्श करके सब अपने को कृतार्थ मानने लगे। सिद्धकुमार ने भी मुनिराज के चरण कमलों में उल्लासपूर्वक साष्टांग प्रणाम किया। मुनिराज ने उसके मस्तक पर हाथ रखकर सेठजी से कहा "यह जीव इसी भव में भगवती जिनदीक्षा धारण करके परमानन्दमय शाश्वत सिद्धदशा को प्राप्त करेगा" —ऐसा कहकर मुनिराज वहाँ से विहार कर गये।

सिद्धकुमार के विषय में यह बात सुनकर सेठजी और समस्त कुटुम्बीजनों के हृदय में हर्ष का सागर लहराने लगा, आनन्दमग्न सेठजी ने महान उत्सव किया, उस दिन से सब सिद्धकुमार के प्रति अत्यन्त भक्ति प्रेम रखने लगे।

इधर सिद्धकुमार का अभ्यास क्रम भी शीघ्रता से आगे बढ़ने लगा। उसकी बुद्धि का चमत्कार देखकर उसके शिक्षक भी

आश्चर्यमग्न हो जाते। लगभग तेरह वर्ष की आयु होने तक तो सिद्धकुमार ने लौकिक अभ्यास में गणित, साहित्य विज्ञान, कविता आदि का अधिकांश अभ्यास कर लिया। और धार्मिक अभ्यास में भी चारों अनुयोगों का अच्छी तरह अभ्यास किया। नवतत्त्व, छह द्रव्य, त्रिलोक की रचना, कर्म का स्वभाव, श्रावक और मुनि के आचरण तथा ऋषभादि त्रेसठ शलाका पुरुषों का चरित्र अभ्यास होने पर सिद्धकुमार को समस्त जगत की व्यवस्था और संसार-मोक्ष का स्वरूप ज्ञात होने लगा।

स्वाध्याय तथा वीतरागी मुनियों के समागम से उन्होंने आत्मा के स्वरूप का भी अभ्यास किया। **उनके अन्तर में निश्चय हुआ कि अहो! इस अनन्त संसार-सागर में जीव को अनन्त दु:खों का एक मूल कारण भ्रमरूप मिथ्या मान्यता ही है। इन अनन्त दु:खों से मुक्त करके मोक्षमार्ग में स्थापित करने वाला कल्याणमूर्ति एक मात्र सम्यग्दर्शन ही है, वही धर्म का मूल है। इस सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के बिना जीव जो कुछ करता है वह संसार में परिभ्रमण का ही कारण होता है। ऐसे कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन के लिये सिद्धकुमार की जिज्ञासा और आकांक्षा बढ़ने लगी। संसार के सुख-वैभव से उसकी वृत्तियाँ उदासीन होने लगी।** अब वह अधिक समय मुनियों के समागम में रहने लगा। वीतरागी मुनियों का भी उसके प्रति परम अनुग्रह रहता था।

इसप्रकार सम्यग्दर्शन के लिये तरसते हुए सिद्धकुमार की आयु १६ वर्ष के लगभग हो गई। सामान्यत: युवा पुत्र को देखकर माता-पिता का विचार विवाह करने का होता है, परन्तु संसार के प्रति उसकी तीव्र उदासीनता देखकर सिद्धकुमार के पिता उनके समक्ष ब्याह की बात न कह सके।

एक बार रात्रि के अन्तिम प्रहर में सिद्धकुमार आत्मा के स्वरूप का चिंतवन कर रहे थे। अपने अखंड ज्ञायक स्वाभाव में

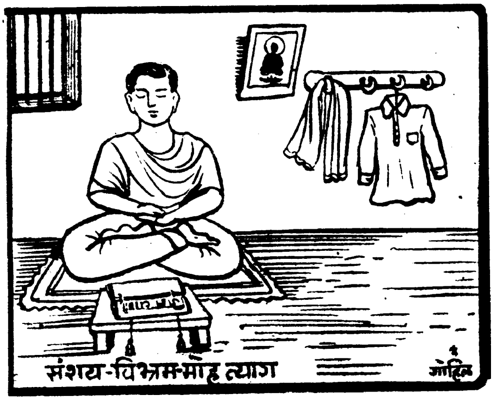

लीन होने से अंतरंग ज्ञान भानु का उदय हुआ, मिथ्यात्व परिणति का नाश हो गया। शरीर, कर्म और संयोग से भिन्न एवं विकारी तथा अपूर्ण पर्याय से पार त्रिकाल शुद्ध चैतन्यस्वरूप निजात्मा का अनुभव हुआ। अनादि से जो परिणति परपदार्थ और विकार का आश्रय करती हुई अनन्त क्लेश को पा रही थी, वह अब स्वभाव का आश्रय लेकर क्लेशरहित हुई और जिसे प्राप्त करने की भावना सिद्धकुमार वर्षों से कर रहे थे वह स्वरूपनिधि प्राप्त होने से सिद्धकुमार को भी परमानंद प्राप्त हुआ। उन्हें त्रिलोक पूज्य सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई, इससे वे अपने को कृतकृत्य समझने लगे।

प्रभात होते ही स्नानादि से निवृत होकर सिद्धकुमार जिनमन्दिर में पूजन करने गये। पश्चात् नगर के बाहर विराजमान वीतरागी मुनि श्री जिनेन्द्राचार्य के निकट गये, अपने को हुए स्वानुभव का वर्णन किया तथा हाथ जोड़कर प्रार्थना की—

"हे प्रभो! अब मेरी परिणति संसार से उदासीन हुई है, मुझे भगवती जिनदीक्षा देकर अपने चरणकमलों का आश्रय दीजिये।" — ऐसा कहकर सिद्धकुमार ने चारित्रदशा धारण करने की अपनी अन्तरभावना आचार्य देव के समक्ष व्यक्त की।

सिद्धकुमार की इस उच्च भावना की आचार्यदेव ने अनुमोदना की और जिनदीक्षा धारण करने के लिये कुटुम्बीजनों की अनुमति *लेने को कहा। सिद्धकुमार परम-भक्ति से नमस्कार करके अपने घर* आये।

उन्होंने घर आकर माता-पिता तथा कुटुम्बीजनों से जिनदीक्षा लेने की अभिलाषा व्यक्त की। यह सुनकर उनके धर्मनिष्ठ माता-पिता तथा कुटुम्बीजन हर्ष से अवाक् रह गये। माता-पिता की आँखों से आनंद के आँसू बहने लगे। सिद्धकुमार ने उन्हें वैराग्य प्रेरक तत्त्व सुनाया। माता-पिता तथा कुटुम्बीजनों ने सिद्धकुमार को हार्दिक अनुमोदना पूर्वक जिनदीक्षा लेने की अनुमति दी और दीक्षा का बड़ा उत्सव मनाया। महान रथयात्रा के रूप में सब गाजे-बाजे सहित श्री जिनेन्द्राचार्य के निकट आये। सिद्धकुमार ने गुरुदेव को नमस्कार करके विधिपूर्वक समस्त परिग्रह का त्याग किया और निर्ग्रन्थ दशा धारण की।

जिनदीक्षा ग्रहण करके मुनिराज सिद्धकुमार अपने आत्मस्वभाव में लीन रहते हुए प्रचंड पुरुषार्थ द्वारा मोह शत्रु का चारों ओर

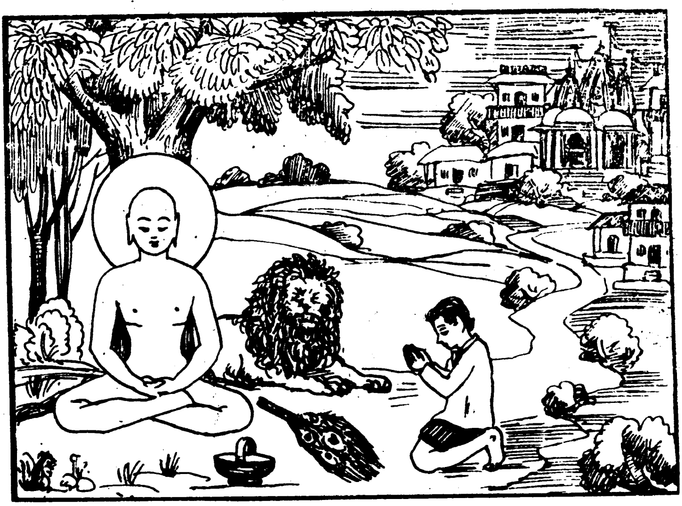

से नाश करने लगे। एक दिन मध्यरात्रि के समय स्व-स्वरूप में लीन होकर, विद्यमान अल्प मोहभाव का भी नाश करने को उद्यत हुए। क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होकर मोह शत्रु का सम्पूर्ण नाश किया

और लोकालोक प्रकाशक परमज्योति केवलज्ञान को प्रगट किया।

केवलज्ञान होते ही चारों प्रकार के देव उनके केवलज्ञान का महोत्सव करने आये। केवलज्ञानरूपी दिव्यनेत्र के धारक उन अरहंत परमात्मा ने ॐ दिव्यध्वनि द्वारा मोक्षमार्ग का उपदेश करके अनेक जीवों के संसार ताप को शांत किया। इस प्रकार कई वर्ष तक सारे संसार में वस्तु स्वभाव का उपदेश करके अनेक जीवों को मोक्षमार्ग की प्राप्ति कराई। निर्वाण के पूर्व उनकी देह सम्मेद शिखर पर स्थित हो गई और तुरन्त योग निरोध करके चौदहवें गुणस्थान में प्रवेश किया और अल्पकाल में ही देह मुक्त होकर उनका आत्मा एक समय में लोकाग्र में स्थित हुआ और शाश्वत परमानन्दमय तथा केवलज्ञानादि गुणों सहित सर्वोत्कृष्ट सिद्धदशा को प्राप्त हुआ।

कालुष्यमेषि यदिह स्वयमात्मकामो,
जागर्ति तत्र ननु कर्म पुरातनं ते।
योऽहिं विवर्धयति कोऽपि विमुग्धबुद्धिः,
स्वस्योदयाय स नरः प्रवरः कथं स्यात्।।३४।।

हे आत्मन्! इस संसार में तुम पञ्चेन्द्रियों के विषयों की लालसा (इच्छा) करते हुए स्वयं अपने परिणाम कलुषित करते हो, क्योंकि इन विषयों की कामना (इच्छा) से तेरा पूर्व में बाँधा हुआ पाप कर्म जागृत होता है; क्योंकि जो कोई अज्ञानियों का चक्रवर्ती अपने कल्याण के उद्देश्य से सर्प को दूध पिलाकर पुष्ट करता है, वह किस प्रकार श्रेष्ठ हो सकता है? अपितु नहीं हो सकता है। – *आचार्य सोमदेव*

१

कभी सोचा! तुम्हारा परभव में क्या होगा?

इस संसार में परिभ्रमण करते हुए मैंने पूर्वकाल में चाँदी-सोना, रत्न, औषधि, सिंह-बाघ-हाथी-घोड़ा-मगरमच्छ, आदि की पहचान की; किन्तु इस देह में विद्यमान चैतन्यरत्न की परख नहीं की, जगत में सर्व श्रेष्ठ ऐसे अपने चैतन्यरत्न को कभी नहीं पहिचाना।

मेरे लिये इस जगत में हीरा-जवाहरात आदि कोई भी पदार्थ अपूर्व नहीं है, किन्तु मेरा आत्मा ही मेरे लिए अपूर्व पदार्थ है। - ऐसा विचार करके जिज्ञासु आत्मा शीघ्र अपने शुद्ध चैतन्यरत्न की प्राप्ति का उपाय करता है।

देखो, एक दृष्टान्त आता है कि— किसी नगर में एक वृद्ध जौहरी था, वह जवाहरात की परीक्षा में बहुत होशियार था। एक बार एक परदेशी जौहरी एक मूल्यवान रत्न लेकर आया और वहाँ के राजा से कहा कि— आप अपने यहाँ के जौहरियों से इस रत्न का मूल्यांकन कराइये। राजा ने जौहरियों को बुला कर आदेश दिया, किन्तु कोई उस रत्न का मूल्यांकन न कर सका। अन्त में जब राजा ने उस वृद्ध जौहरी को बुलवाया तब उस जौहरी ने

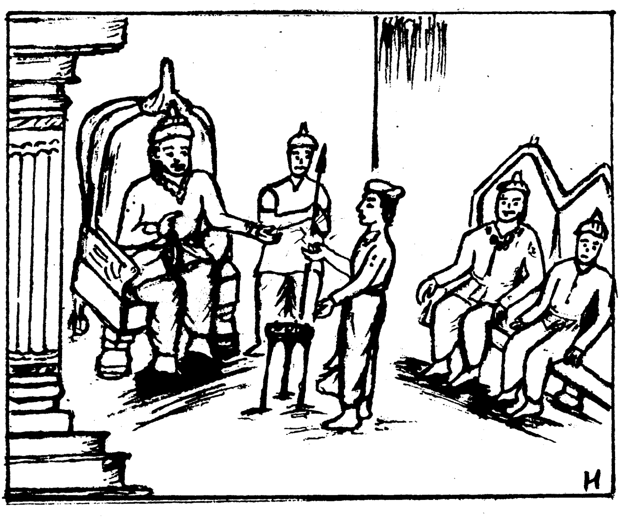

बराबर मूल्यांकन कर दिया, इसलिये राजा ने प्रसन्न होकर उसे इनाम देने के लिये मंत्री को आज्ञा दी। मंत्री ने कहा कि दूसरे दिन इनाम की घोषणा करेंगे।

रात्रि के समय मंत्री ने उस जौहरी को बुलाकर पूछा— कि जौहरीजी, आप इन रत्नों की परीक्षा करना तो सीखे, किन्तु इस देह से भिन्न चैतन्यरत्न को कभी पहिचाना है?

जौहरी बोला— नहीं, मुझे चैतन्यरत्न की परीक्षा करना नहीं आता।

मंत्री बोला— "अरे जौहरी! तुम अस्सी वर्ष के हो गये हो, तुम्हारी मृत्यु का समय निकट आ गया है और इस मनुष्य भव में अभी तक तुमने अपने चैतन्य रत्न को पहिचानने के लिए कुछ नहीं किया। मोतियों और रत्नों की परख की, किन्तु चैतन्यरत्न की परख नहीं की तो यह अमूल्य मनुष्य भव पूरा होने पर आत्मा का डेरा कहाँ होगा?"— ऐसी सीख देकर उस समय जौहरी को विदा कर दिया और दूसरे दिन दरबार में आने को कहा।

दूसरे दिन दरबार लगा है, राजा और मंत्री बैठे हैं, जौहरी भी आये हैं। राजा ने मंत्री को आज्ञा दी कि अब इन जौहरीजी के इनाम की घोषणा करो।

मंत्रीजी ने खड़े होकर कहा कि महाराज! इन जौहरीजी को मैं सात जूते मारने के इनाम की घोषणा करता हूँ। मंत्री की बात सुनकर राजा सहित सारी सभा आश्चर्य-चकित हो गई....उसी समय जौहरी स्वयं खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर राजा से कहने लगा कि महाराज! जो कुछ मंत्रीजी कहते हैं, वही सच है।

अरे! मुझे सात नहीं चौदह जूते मारना चाहिये....जौहरी की बात सुनकर सबको विशेष आश्चर्य हुआ। अन्त में जौहरी ने स्पष्टीकरण किया कि हे राजन्! मंत्रीजी के कथनानुसार मैं जूतों के ही योग्य हूँ, क्योंकि मैंने अपना जीवन आत्मभान के बिना यों ही

गवाँ दिया। मैंने इस जड़ हीरे को परखने में अपना अब तक का सारा जीवन बिता दिया, किन्तु अपने चैतन्यरत्न की कभी परख नहीं की। यह भव पूरा होने पर मेरे आत्मा का क्या होगा? इसका मैंने कभी विचार नहीं किया।

मंत्रीजी ने मेरे लिये सात जूतों के इनाम की घोषणा करके मुझे आत्महित के लिये जागृत किया है, इसलिये वे मेरे गुरु के समान हैं।

यहाँ आत्मार्थी जीव विचार करता है कि— अरे! मैंने भी जड़ रत्नादि की तो परख की, किन्तु चैतन्यरत्न को नहीं पहिचाना।

देखो, जो आत्मार्थी हो, जिसे आत्मप्राप्ति की लगन हो—ऐसे जीवों को संत-महात्मा कहते हैं कि अरे जीव तू सुन! यह तेरी कथा कही जा रही है। तेरा आत्मा संसार में किसलिये दु:खी हो रहा है और वह दु:ख कैसे दूर हो सकता है, वह मैं तुझ से कहता हूँ।

यह चैतन्य-हीरा क्या वस्तु है इसका भान न करे और गले में सत्रह लाख के हीरों का हार पहिना हो तो, वे हीरे कहीं मृत्यु के समय तुझे शरणभूत नहीं होते।

जीव को शरणभूत तो एक सम्यग्दर्शन रत्न है। उस रत्न के सिवाय करोड़ों-अरबों के रत्न भी अनंतबार प्राप्त हो चुके हैं, किन्तु वे आज तक न तो शरणभूत हुए हैं, न हैं और कोई न भविष्य में कभी शरणभूत होंगे।

भाई! जगत में तुझे आत्मज्ञान के बिना अन्य कोई शरणभूत नहीं है। देखो, इस जगत में पैसादि का संयोग तो पूर्व पुण्य-पाप के अनुसार होता है। वर्तमान में कोई जीव महापापी हो, दंभी हो तथापि पूर्व प्रारब्ध से लाखों रुपये कमाता हुआ सुखी दिखाई देता है; और कोई जीव सरल परिणामी हो, पाप से डरने वाला हो तथापि पूर्वभव के अशुभ प्रारब्ध के कारण उसे वर्तमान में भरपेट भोजन भी नहीं मिलता।

भाई! यह सब तो पूर्व प्रारब्ध के अनुसार प्राप्त होता है, किन्तु यह आत्मा कहीं प्रारब्ध से प्राप्त नहीं होता। स्वयं सत्समागम से चैतन्यस्वरूप को समझने का प्रयत्न करे तो आत्मा का भान होता है। ऐसे आत्मा का भान करना ही जीव को शरणभूत है, उसके अतिरिक्त लक्ष्मी का ढ़ेर अथवा अन्य कोई शरणभूत नहीं है।

चैतन्यस्वरूप को भूले हुए जीव पुण्य-पाप से चार गति में परिभ्रमण करते हैं। जो पुण्य करते हैं, वे देव और मनुष्य होते हैं और जो तीव्र माया-कपट करते हैं, वे तिर्यंच-पशु होते हैं और तीव्र हिंसादि पाप करने वाले जीव मरकर नरक में जाते हैं। चैतन्य का भान करने वाला जीव चार गति के परिभ्रमण से छूटकर सिद्धगति प्राप्त करता है।

इस शरीर की नाड़ी की गति कैसी चलती है और कितनी धड़कने होती हैं, उसकी परीक्षा करते हैं, लेकिन अन्तर में आत्मा विद्यमान है, उसकी गति का जीव विचार भी नहीं करता। किस जमीन में कैसा अनाज उत्पन्न होगा उसका विचार करते हैं, किन्तु मैं **जिन भावों का सेवन कर रहा हूँ, उन भावों का फल आत्मा में कैसा आयेगा, उसका विचार नहीं करते।**

यह भव पूरा होने पर जीव के दूसरे भव का प्रारम्भ होता है। उस दूसरे भव में मेरा क्या होगा? उसका विचार भी यह नहीं करता। देखो, बीस वर्ष का आदमी ऐसा विचार करता है कि मैं सौ वर्ष जीऊंगा तो शेष अस्सी वर्ष के लिये मुझे इतने खर्च की आवश्यकता होगी और उसके लिये मैं ऐसा करूंगा। – इसप्रकार इस भव में अस्सी वर्ष की सुविधाओं का विचार करता है, किंतु यह भव पूरा होने पर दूसरे ही क्षण दूसरा भव प्रारम्भ होगा उसमें मेरा क्या होगा, उसका विचार नहीं करता।

वह दूसरा भव किसका है? इस जीव का ही वह दूसरा भव है, तो फिर उस भव में मेरा क्या होगा? हे भाई! जरा उसका

विचार तो कर! यदि इस भव के बाद आने वाले दूसरे भव का यथार्थ विचार करे तो क्षणिक देहदृष्टि छूटकर चैतन्य की दृष्टि हो जाये। **भाई! यहाँ थोड़े समय की थोड़ी-सी प्रतिकूलता में भी आकुल-व्याकुल हो जाता है तो फिर दूसरे सम्पूर्ण भव में तेरा क्या होगा?– उसका तो विचार कर। यदि इस भव में आत्मा की दरकार नहीं करेगा तो तेरा आत्मा अनन्त संसार में कहीं खो जायेगा। इसलिये हे भाई! यदि तुझे सचमुच दुःख अच्छा न लगता हो तो इस देह से भिन्न आत्मा को सत्समागम द्वारा पहिचान।**

ज्ञानी के गज दूसरे

स्कूल में पढ़नेवाला नौ वर्ष का एक बालक रविवार का दिन होने से घर पर ही था, उसके पिता बाजार से एक मलमल का थान लाये। पुत्र ने पिता से पूछा कि यह थान कितने हाथ का है?

पिता ने उत्तर दिया कि यह पचास हाथ का है। लड़के ने उस थान को अपने हाथ से मापकर कहा कि यह थान तो पचहत्तर हाथ का है। आपकी बात झूठ है। तब पिता ने कहा— भाई! हमारे लेन-देन के काम में तेरे हाथ का माप नहीं चलता।

उसीप्रकार यहाँ ज्ञानी कहते हैं कि— संयोगदृष्टि वाले, बाह्यदृष्टि वाले अज्ञानी की बालबुद्धि में से उत्पन्न हुई कुयुक्ति अतीन्द्रिय आत्मस्वभाव को मापने/समझने में काम नहीं आती। धर्मात्माओं के हृदय को अज्ञानी नहीं माप सकते।

इसलिये ज्ञानी को पहिचानने के लिये अपूर्वदृष्टि से प्रथम उस मार्ग का परिचय करो, रुचि बढ़ाओ, विशाल बुद्धि, सरलता, मध्यस्थता और जितेन्द्रियता इत्यादि गुण प्रगट करो।

१०

जो होता है वह सब अच्छे के लिए

"जो होता है वह सब अच्छे के लिए होता है" —इस कहावत में से भी अपना हित साधने वाले जीव को कितनी शांति मिलती है, इस संबध में यहां कुछ प्रसंग द्रष्टव्य हैं। जैसे कि—

सीताजी की अग्नि परीक्षा हुई सो वह अच्छे के लिए हुई; क्योंकि सीताजी को शीघ्र ही वैराग्य हो गया और उन्हें अर्जिका बनने का अवसर जल्दी मिल गया।

किसी सज्जन व्यक्ति की निंदा हुई तो वह अच्छे के लिए हुई; क्योंकि उसे निंदा सुनकर भी जागृति बनी रहती ।

सेठ सुदर्शन को फांसी की सजा हुई तो वह अच्छे के लिए हुई, क्योंकि इससे उन्हें संसार से विरक्त होकर दिगम्बर दीक्षा धारण कर केवलज्ञान प्रगट करने का अवसर शीघ्र ही प्राप्त हुआ।

इस संबध में एक लोककथा याद आती है कि – एक राजा था और एक दीवान था। जो कुछ भी होता था, उसी में समाधान प्रिय दीवान को भी अपने खुशाल भाई की तरह यह बोलने की आदत थी कि "जो होता है सब अच्छे के लिए"। एक बार ऐसा प्रसंग बना कि राजा और दीवान दोनों जगंल में गये, वहां राजा की एक अंगुली कट गई। तब सहज भाव से दीवान के मुख से निकल गया "जो होता है सब अच्छे के लिए।"

तब राजा मन में काफी क्लेशित हुआ कि एक तो मेरी अंगुली कट गई और ऊपर से दीवान कह रहा है "जो होता है सो अच्छे के लिए।"

राजा ने भी आगे मौका देखकर एक कुए के ऊपर लगी हुई झाड़ी के फल को तोड़ने हेतु दीवान से कहा। तब फल

तोड़ते समय दीवान अचानक कुए में जा गिरा। तब राजा द्वारा कुए में ढूकने पर राजा ने देखा कि दीवान तो कुए में पड़ा-पड़ा भी यही कह रहा है कि "जो होता है सब अच्छे के लिए" परन्तु फिर भी राजा दीवान के ऊपर हंसता हुआ वहां ही घूमता रहा। थोड़ी देर बाद वहां भीलों का एक समुदाय आ पहुंचा। और उसे राजा के पास पकड़ कर ले गया।

भीलों का राजा नरबलि चढ़ाने के लिए एक राजा को पाकर बहुत खुश हुआ और वलि चढ़ाने हेतु राजा का वध करने की तैयारी करने लगा। जब वध करने हेतु वधिक उसके ऊपर तलवार चलाने को तैयार हुआ, तभी एक भील की नजर उसकी उस कटी हुई अंगुली पर पड़ी और वह भील जोर से चिल्ला उठा कि रुको, यह मनुष्य बलि चढ़ाने योग्य नहीं है; क्योंकि इसकी एक अंगुलि कटी हुई है। और खंडित मनुष्य की बलि नहीं चढ़ाई जा सकती अन्यथा अपशकुन हो जायेगा। इसलिए इसे छोड़ दो, यह सुनकर भीलों के राजा ने उस राजा को छोड़ दिया।

राजा को भी तुरंत अपने दीवान की याद आई और उसने मन ही मन कहा– "जो होता है सब अच्छे के लिए" –क्योंकि यदि आज मेरी अंगुलि कटी हुई न होती तो अवश्य ही मेरा वध हो गया होता और यह सोचता हुआ राजा वहां से तत्काल

प्रसन्नचित्त होकर दीवानजी के पास गया और दीवानजी से बोला कि दीवानजी! "जो होता है सब अच्छे के लिए" — यह बात मेरे लिए तो सत्य निकली; परन्तु तुमने कुए में गिरकर भी यह बात क्यों कही थी?

दीवान ने कहा कि हे महाराज! मेरे लिए भी यह बात सत्य ही साबित हुई; क्योंकि यदि मैं कुए में न गिरता तो मैं भी आपके साथ उन भीलों के चंगुल में फंस जाता और मेरी बलि चढ़ जाती। अतः मेरा कुए में गिरना भी अच्छे के लिए ही हुआ। अतः "जो होता है सब अच्छे के लिए" ही होता है।

यह तो एक स्थूल दृष्टांत है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में प्रतिदिन अच्छे-बुरे अनेकों प्रसंग बनते ही हैं; परन्तु उन समस्त प्रसंगों के बीच में रहकर अपने परिणामों को शांत और समाधान पूर्ण रखना तथा उनमें से अपने आत्म हित के ही मार्ग की प्रेरणा लेना, — यही आत्मार्थी का मुख्य कर्तव्य है। लौकिक सुख-दुख के किसी भी प्रसंग में कायरों की भांति बैठे रहना — यह मुमुक्षु का काम नहीं है; **परंतु अत्यंत धैर्य पूर्वक वीर संतो के मार्ग को वीरता पूर्वक पकड़े रहना। इसप्रकार जो कोई प्रसंग हो, वह सब अपने लिए अच्छा ही होता है। ऐसा उसमें से अपना हित निकालना चाहिए और अपने हित के लिए सम्पूर्ण सामर्थ्य प्रगट करना ही आत्मार्थी का प्रथम कर्तव्य है।**

यह जीवन दुखों के लिए नहीं मिला है, पाप के लिए नहीं मिला है; परन्तु चैतन्य की महान आराधना करने के लिए मिला है, सुख के लिए मिला है । मुमुक्षु का यह जीवन वीतरागी पवित्रता प्राप्त करने के लिए है।

जहाँ सच्ची मुमुक्षुता है, वहाँ जो भी होता है सब अच्छे के लिए ही होता है।

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि
भव्यात्मनां विभव-संभव-भूरिहेतु।

११

हसमुख की फरियाद

हसमुख— श्रीमान् जी! मैं आज जब पाठशाला आ रहा था, तब भूपत ने मुझे गाली दी।

गुरुजी— तब फिर आज हम इसी सम्बन्ध में विचार करते हैं। बताओं हसमुख ये भूपत कौन-सा द्रव्य है?

हसमुख— ये तो जीवद्रव्य है।

गुरुजी— तब गाली किसमें से बनी? बोलो बसंत।

बसंत— यह तो पुद्‌गल द्रव्य में से।

गुरुजी— पूरा कहो? कौन कहेगा?

धरणीधर— श्रीमान् जी! यह अनेक पुद्‌गल द्रव्यों से बने हुये स्कंधों की भाषा वर्गणा की पर्याय है।

गुरुजी— बराबर, तब भूपत तो जीव द्रव्य है और गाली नामक शब्द पुद्‌गल द्रव्य से बना है। तब फिर दोनों द्रव्य अलग-अलग सिद्ध हुए।

हसमुख—परन्तु मुझे गाली देने का भाव तो भूपत ने किया न?

गुरुजी—तुम शान्त तो रहो, यह बात भी आती है। बोलो, भूपत ने गाली देने का भाव किया, इसलिये गाली निकली? कौन जबाब देगा?

रजनी— नहीं श्रीमान्! ऐसा कैसे बने? जीव और पुद्‌गल दोनों स्वतन्त्र और अलग-अलग हैं।

गुरुजी— तब पुद्‌गल के परमाणुओं को गाली-रूप परिणमाने के लिये भूपत को ऐसा भाव करना पड़ा, ऐसा कहें तो?

मनसुख—यह भी दोषपूर्ण है।

गुरुजी— क्यों? नियमानुसार समझाइये?

मनसुख— प्रत्येक द्रव्य में एक अगुरुलघु नामक सामान्य गुण है, जिसके कारण द्रव्य की द्रव्यता सदा कायम रहती है अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप कभी परिणमन नहीं करता।

हसमुख— तब भूपत ने गाली देने का भाव किया, उसका तो कुछ होना चाहिए?

ज्योतिन्द्र— (बीच में बोल उठा) क्यों नहीं? उसका, इसको तो ऐसा करना चाहिये कि फिर गाली देना ही भूल जाय।

गुरुजी— तुम तो भाई, भारी उतावले हो। यह बात मैं कहीं भूल नहीं गया हूँ। शान्त होकर सुनो तो सही। बोलो, भूपत के गाली देने के भाव को कौन सा भाव कहें?

किशोर— यह तो खराब भाव कहा जाता है। इससे तो पाप बंधता है।

हसमुख— पाप बंधा, वह तो पुद्‌गल में आया? उसमें भूपत के आत्मा को क्या सजा हुई?

किशोर— सजा क्यों न हुई? जब पाप के भाव करने से घाति कर्मरूपी पाप बंधता है, आत्मा की पर्याय हीन बनती है तो फिर यह तो पाप का भाव हुआ। इससे तो अधिक नुकसान हुआ। पाप भाव से तो मूढ़ता बढ़ी और संसार बढ़ा।

गुरुजी— शाबाश किशोर! तुमने ठीक स्पष्ट किया। तो फिर क्या तुम्हारा गाली के बदले गाली देने का विचार है? बोलो हसमुख! क्या विचार है?

हसमुख— नहीं श्रीमान्, ऐसा करने पर तो इस खराब भाव का फल पीछे मुझे ही भोगना पड़ेगा।

गुरुजी— तब पुद्‌गल से बने हुये शब्दों को ठपका देना तो ठीक है न? सब हँस पड़ते हैं और एक साथ सब बोल उठे कि श्रीमान्, यह तो जड़ है इसे कहाँ खबर है कि हम कौन हैं?

गुरुजी— फिर अब करना क्या है? हसमुख अब कुछ करने का बाकी रहा नहीं। जानना और देखना। प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने कारण टिका रहकर बदलता है। ऐसा इस जगत का नाटक है, उसको देखकर अपने को देखना ही दु:ख और शान्ति मिटाने का महत्त्वपूर्ण उपाय है। सभी बहुत खुश हुये और आज तो हसमुख ने शिकायत करके ठीक न्याय निकाला ऐसा कहकर सब बिखर गये।

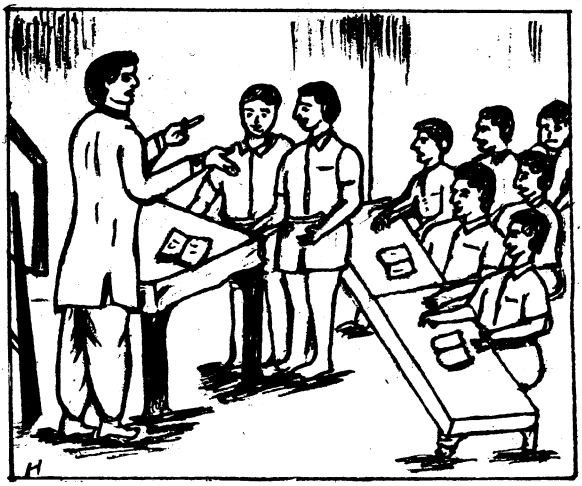

इसीसमय एक नये सज्जन पाठशाला में आये और सब देखकर बोले, वाह रे वाह! यह तो भाई कॉलेज का कॉलेज है मनुष्य बनाने की महाशाला है । ऐसी शालायें तो ग्राम-ग्राम में होना चाहिये।

स्वभाव समर्थ है,
विभाव विपरीत है;
संयोग प्रथक् है।

इन तीन को यथार्थ जाने तो स्वभाव के आश्रय से पर्याय में निर्मल दशा प्रगट हो और विभाव अवस्था का अभाव हो।

स्वभाव सुखरूप है।
विभाव दुख रूप है।
संयोग ज्ञेय रूप है।

इन तीन को यथार्थ जाने तो स्वभाव के आश्रय से सुख रूप दशा प्रगट हो और दुख रूप अवस्था का अभाव हो।

१२

दो भाई, शान्ति की शोध में

जिसे अपने आत्मा का हित करना हो उसे पहले अंतर में खटका जागृत होना चाहिये कि अरे! मेरे आत्मा का हित किस प्रकार हो? मेरे आत्मा को कौन शरण रूप है? संत कहते हैं कि यह देह या राग कोई तुझे शरण नहीं है। प्रभो! एक समय में ज्ञानानन्द से परिपूर्ण तेरा आत्मा ही तुझे शरण है, उसे पहिचान।

दो सगे भाई एक साथ नरक में हों, एक सम्यग्दृष्टि हो और दूसरा मिथ्यादृष्टि। वहाँ सम्यग्दृष्टि को तो नरक की घोर प्रतिकूलता में भी चैतन्यानन्द का अंशतः वेदन वर्त रहा है....और मिथ्यादृष्टि अकेले संयोगों की ओर देखकर दुःख की वेदना में तड़फता है....अपने भाई से पूछता है कि— "अरे भाई, कोई शरण है? इस घोर दुःख में कोई सहायक है?...कोई इस वेदना से छुड़ाने वाला है? हाय-हाय! कोई नहीं है इस असह्य वेदना से बचाने वाला।"

तब सम्यग्दृष्टि भाई कहता है कि— अरे बंधु! कोई सहायक नहीं है, अंतर में भगवान चैतन्य ही आनन्द से परिपूर्ण है, उसकी भावना ही इस दुःख से बचाने वाली है। चैतन्य की भावना के बिना अन्य कोई दुःख से बचाने वाला नहीं है — अन्य कोई सहायक नहीं है। यह शरीर और यह प्रतिकूल संयोग इन सब से पार चैतन्य स्वरूपी आत्मा है, ऐसे भेदज्ञान की भावना के अतिरिक्त जगत में दूसरा कोई दुःख से बचाने वाला नहीं है, कोई शरण नहीं है।

इसलिये भाई! एकबार संयोग को भूल जा...और अन्तर में जो आनन्द स्वरूप चैतन्य तत्त्व है, उसकी ओर देख! वह एक ही शरण है। पूर्व काल में तूने अपने आत्मा की परवाह नहीं की, पाप करते हुए पीछे मुड़ कर नहीं देखा, इसलिये इस नरक में जन्म हुआ, अब तो इसी दशा में हजारों वर्ष की आयु पूरी करना

पड़ेगी....संयोग नहीं बदल सकता, अपना लक्ष्य बदल दे, संयोग से पृथक् आत्मा पर लक्ष्य कर! संयोग में तेरा दु:ख नहीं है, अपने आनन्द को भूलकर तूने स्वयं ही मोह से दु:ख उत्पन्न किया है। इसलिये एकबार आत्मा और संयोग को भिन्न जान कर संयोग की भावना छोड़ और चैतन्यमूर्ति आत्मा की भावना कर। मैं तो ज्ञानमूर्ति हूँ, आनन्द मूर्ति हूँ, यह संयोग और यह दु:ख — दोनों से मेरा आत्मस्वभाव पृथक् ज्ञान-आनन्द की मूर्ति है। — इसप्रकार आत्मा का निर्णय करके उसकी भावना करना ही दु:ख के नाश का उपाय है। चैतन्य की भावना में दु:ख कभी प्रविष्ट नहीं हो सकता।

जहाँ कभी दु:ख का प्रवेश नहीं हो सकता, वहीं हमें निवास करना चाहिये। चैतन्य स्वरूप आत्मा की भावना में आनन्द का वेदन है, उसमें दु:ख का प्रवेश नहीं है.... ऐसे चैतन्य में एकाग्र होकर निवास करना ही दु:ख से छूटने का उपाय है। कषायों से संतप्त आत्मा को अपने शुद्ध स्वरूप का चिंतन ही उससे छूटने का उपाय है। इसलिये हे बंधु! स्वस्थ होकर अपने आत्मा की भावना कर.... उसके चिंतन से तेरे दु:ख क्षणमात्र में शांत हो जायेंगे।

धर्मी जानता है कि— अहो! मेरे चैतन्य की छाया इतनी शांत-शीतल है कि उसमें मोह सूर्य की संतप्त किरणें प्रवेश नहीं कर सकतीं। कोई संयोग भी उसमें प्रविष्ट नहीं हो सकता। इसलिये मोहजनित विभावों के आताप से बचने के लिये मैं अपने चैतन्य तत्त्व की शांत...... उपशांत.... आनन्दमयी छाया में जाता हूँ....अपने चैतन्य स्वभाव की ही भावना भाता हूँ। •

१३

धन्य है वह पुत्र...और धन्य है वह माता!

कुँवर कन्हैया जैसे आठ वर्ष के कोमल राजकुमार को आत्मा के भान सहित वैराग्य होने पर जब आनन्द में लीन होने की भावना जागृत होती है, तब वह माता के पास जाकर दीक्षा के लिये आज्ञा माँगता है कि हे माता! अब मैं आत्मा के परम आनन्द की प्राप्ति की साधना के लिये जाता हूँ....हे माता! अब मैं सुखी होने के लिये जाता हूँ.... माता की आखों से आसुओं की धारा बह रही है और पुत्र के रोम-रोम में वैराग्य की छाया छा रही है।

वह कहता है कि अरे माता! जननी होने के नाते तुम मुझे सुखी करना चाहती हो, तो अब मैं मेरे अपने सुख की साधना के लिये जाता हूँ, तुम मेरे सुख में बाधक न होओ, तुम तो मुझे अनुमति दो। माँ! मैं अपने आत्मानन्द की साधना के लिये जाता हूँ, उसमें तुम दु:खी होकर विघ्न न डालो। हे जननी! मुझे आज्ञा दीजिये, मैं आत्मा के आनन्द में लीन होने जा रहा हूँ।

माता भी धर्मात्मा है, अत: वह पुत्र से कहती है कि बेटा! मैं तेरे सुख के पथ में विघ्न नहीं बनूँगी, तेरे सुख का जो पंथ है वही

हमारा पंथ है। माता की आँखों से आँसू की धारा बहती जाती है और वैराग्य पूर्वक कहती है कि हे पुत्र! तू आत्मा के परम-आनन्द में लीन होने के लिये जाता है, तो मैं तेरे सुख के मार्ग में बाधक नहीं बनूँगी....मैं तुझे नहीं रोकूँगी.... तू मुनि होकर आत्मा के परमानन्द की साधना के लिये तैयार हुआ है उसकी मैं अनुमोदना करती हूँ। बेटा! तू आत्मा के निर्विकल्प आनन्द रस का पान कर। हमें भी वही करने योग्य है।— इसप्रकार माता पुत्र को आज्ञा देती है।

अहा! आठ वर्ष का कुँवर जब वैराग्य पूर्वक इस प्रकार माता से आज्ञा माँगता होगा और माता जब उसे वैराग्य पूर्वक सुख के पंथ में विचरने की आज्ञा देती होगी, वह अपूर्व प्रसंग कैसा होगा! फिर वह छोटा-सा राजकुमार दीक्षा लेकर, मुनि होकर, एक हाथ में छोटा-सा कमण्डलु और दूसरे हाथ में पीछी लेकर निकलता होगा, उस समय तो ऐसा लगता होगा मानों छोटे-से सिद्ध भगवान ऊपर से उतर आये हों। वैराग्य का अद्भुत दृश्य! आनन्द में लीनता! वाह रे वाह, धन्य है वह दशा!!

और फिर जब वे आहार के लिये निकलते होंगे, आनन्द में झूलते हुए धीरे-धीरे ईर्या समिति पूर्वक चलते होंगे और आहार के लिये नन्हें-नन्हें हाथों की अञ्जलि जोड़कर खड़े होते होंगे, वह कैसा अद्भुत दृश्य होगा!

फिर वे आठ वर्ष के मुनिराज अपने अंत:तत्त्व कारणपरमात्मा के बल द्वारा आत्मध्यान में लीन होकर केवलज्ञान प्रगट करते हैं और सिद्ध हो जाते हैं। —ऐसी आत्मा की शक्ति है। आज भी विदेह क्षेत्र में श्री सीमंधरादि भगवान के निकट आठ-आठ वर्ष के राजकुमारों की दीक्षा के ऐसे प्रसंग बनते हैं।

१४

अमरकुमार की अमर कहानी

[जिसमें पंचपरमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार किया जाता है —ऐसा पंच नमस्कार मंत्र जैनियों का सर्वमान्य महामंत्र है। यहाँ उसी महामंत्र के दृढ़श्रद्धानी बालक अमरकुमार के जीवन की घटना पर आधारित लघु नाटिका प्रस्तुत है।]

पात्र परिचय

अमरकुमार	**नाटक का नायक**	**दृढ़ धर्मश्रद्धानी**
छदामीलाल	**नायक का पिता**	**क्रूरचित,लोभी व दरिद्री**
जिनमती	**नायक की माता**	**धर्मश्रद्धानी**
क्रूरसिंह	**नायक का भाई**	**क्रूरचित्त व स्वार्थी**
चोपट्ट	**नगर का राजा**	**क्रूरचित्त व विवेकहीन**
फकीरचन्द	**कुगुरु**	**कुशिक्षा देनेवाला**
ज्ञानचन्द	**उद्घोषक**	**नौकरी का पाबन्द**
चालू-कालू	**चाण्डाल**	**नौकरी के पाबन्द**

[एक नगर का राजा एक किले का निर्माण करवा रहा है; किन्तु निर्माण का कार्य पूर्ण न होकर बारम्बार खण्डित हो जाता है, टूट जाता है। किले को बारम्बार गिरते देखकर राजा को किसी अज्ञानी गुरु ने सलाह दी कि किसी एक बालक का बलिदान दिया जावे तो किले का कोट सम्पूर्ण हो। मूर्खतावश राजा द्वारा भी उस सलाह को स्वीकार करके बलिदान के लिये बालक की खोज हेतु नगर में घोषणा करा दी जाती है।]

उद्घोषक — सुनो! सुनो!! सुनो!!! जो कोई भी व्यक्ति किले के कोट की पूर्णता के लिये बलिदान हेतु अपना पुत्र देगा, उसको राज्य की ओर से सम्मानित किया जायगा और पुत्र के वजन बराबर स्वर्णमुद्राएँ दी जाएंगी।

[अमरकुमार का पिता अत्यन्त दरिद्र है, उसके आठ पुत्र हैं, सबसे छोटा अमरकुमार है, कुटुम्ब का निर्वाह अत्यन्त कठिनाई से होता है, अमरकुमार का पिता उक्त घोषणा सुनता है, लोभ के वशीभूत निर्विचारी होकर विचार करता है कि यदि मैं अमरकुमार को राजा को लिए सोंप दूं तो मेरी सारी दरिद्रता दूर हो जाय। ब्राह्मण घर आकर यह बात अपनी स्त्री से कहता है]

छदामीलाल— जिनमती! क्यों ना हम अपने छोटे बेटे अमरकुमार को बलि चढ़ाने हेतु राजा को दे दें, इससे हमारी शीघ्र ही सम्पूर्ण दरिद्रता दूर हो जायेगी।

जिनमती— नहीं, नहीं, नहीं; मैं उसे तो क्या किसी भी बेटे को बलि चढ़ाने हेतु नहीं देने दूंगी, मैंने उन्हें इसलिये थोड़े ही पैदा किये हैं।

छदामीलाल— (कठोरता पूर्वक) यदि राजा को अभी एक पुत्र नहीं दिया तो हम एक भी पुत्र नहीं बचा पायेंगे, क्योंकि अपने घर में एक के खाने को भी तो भरपेट नहीं हैं। आठ-आठ को कहाँ से खिलायेंगे।

जिनमती— अपने-अपने भाग्य का सब खाते हैं, कोई किसी को नहीं खिलाता।

छदामीलाल— तुम समझती तो हो नहीं, आठों के आठों भूखें मर जायेंगे।

जिनमती— अपनी मौत मरें तो भले मर जायें, परन्तु मैं तो जानबूझकर किसी को भी मौत के मुंह में नहीं भेजने दूंगी।

छदामीलाल— अरी भागवान! वे अपनी मौत नहीं मरेंगे, इसप्रकार मरने पर दोष तो हमें ही लगेगा।

जिनमती— ऐसे कोई नहीं मरता, सभी अपने आयुकर्म के क्षय से मरते हैं और आयुकर्म के उदय से जीते हैं। कोई किसी

को मारता या बचाता नहीं है। मात्र मारने और बचाने का भाव करता है।

छदामीलाल— ये बातें शास्त्रों में ही अच्छी लगती हैं। जीवन में इनका कोई अर्थ नहीं है।

जिनमती— अरे शास्त्रों की बातें कोई शो केस में रखने की वस्तु नहीं है। उनमें तो साक्षात सर्वज्ञ परमात्मा द्वारा बताया गया यथार्थ वस्तुस्वरूप वर्णित है।

छदामीलाल— हमें इससे कोई मतलब नहीं हैं, हम तो अमर को लेने आये हैं।

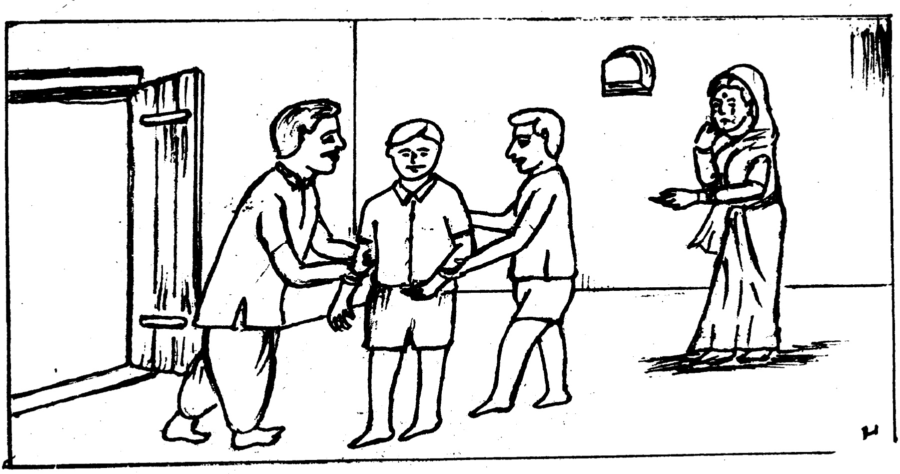

क्रूरसिंह— (अंदर प्रवेश करते हुए) हां-हां पिताजी ठीक कहते हैं, मैं भी अमर को ही खोज रहा था।

जिनमती— अरे जरा ऊपर वाले से डरो, वहां देर है अंधेर नहीं है। सभी को अपने-अपने कर्मों का फल एक न एक दिन अवश्य भोगना पड़ता है।

क्रूरसिंह व छदामीलाल— (एक स्वर से) हमारा समय खराब मत करो, और बताओ कि अमर कहाँ है। हम तो अमर को मारने को ले जाने हेतु आये हैं। बता वह कहा है।

(इसी समय मंदिर से अमरकुमार वापस घर आता है)

अमरकुमार— (वैराग्यभाव से माता को आश्वासन देते हुए) हे माता! तुम शोक का त्याग करो! पंचपरमेष्ठी मेरे हृदय में विराजमान हैं फिर कैसा शोक? हे माता! राजा रक्षक होते हुए भी जब स्वयं भक्षक होने को तैयार है, जन्मदाता पिता भी जब स्वयं सुवर्ण के टुकड़ों के लिये मुझे बेचना चाहता है, तब तुम शोक क्यों करती हो? यह संसार ही ऐसा है, इसमें जीव को पंच परमेष्ठी के अतिरिक्त कोई भी शरण नहीं है। मेरे देह के बलिदान से सभी सुखी हो जाते हैं, तो इससे उत्तम कार्य क्या हो सकता है? अत: मैं पिताजी के साथ खुशी से राजा के पास जाता हूँ। पंच परमेष्ठी का मंत्र मेरे पास है तथा तुम भी इस मंत्र को अपने हृदय में धारण करना।

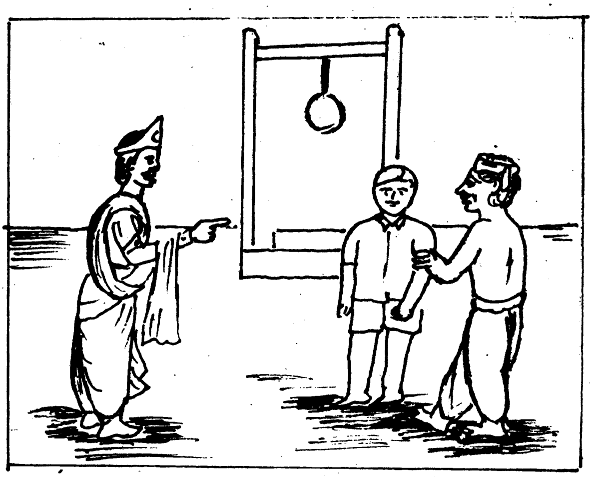

(ऐसा कहकर अमरकुमार नि:शंकता से राजा के पास चला जाता है।)

चौपट्ट राजा— (अमरकुमार की तरफ इशारा करते हुए आदेश की मुद्रा में) इस बालक को वधस्तम्भ पर ले जाओ।

(अमरकुमार को वधस्तम्भ पर ले जाते समय, अत्यन्त शान्त और निर्भय बालक को देखकर उन चाण्डालों का हृदय गद-गद हो जाता है....आँखें अश्रुभीनी हो जाती हैं, हाथ कम्पायमान होने लगते हैं।)

अमरकुमार— भाइयो! मेरे पिता ने धन के लिये मुझे बेच दिया, उनको दया नहीं आई, राजा जो कि प्रजा का रक्षक कहलाता है उसने भी मेरा वध करने की आज्ञा दे दी है तो अब तुम क्या विचार कर रहे हो? तुम अपने कर्तव्य का पालन करो। कुछ देर ठहरो तो.....मैं अपने गुरु द्वारा दिये हुए इष्टमंत्र (पंच नमस्कार-मंत्र) का स्मरण कर लूं.... फिर तुम....।

(ऐसा कहकर बालक वधस्तम्भ के समीप पहुँच जाता है, मस्तक झुकाकर बलिदान के लिये तैयार हो जाता है..... तथा अतिशान्तभाव से पंचपरमेष्ठी का स्मरण करता है, निःस्तब्ध वातावरण उत्पन्न हो जाता है, केवल नमस्कार-मंत्र का मधुर नाद सुनाई देता है।

धड़ाक...........धड़ाक.........धड़ाक

अचानक आकाश में से आवाज आती है, फाँसी के फँदे के स्थान पर माला की रचना हो गई, देव पुष्पवृष्टि कर अमरकुमार का बहुमान करने लगे। सभी ओर नमस्कार मंत्र का प्रभाव फैल गया।

राजा अमरकुमार से क्षमा मांगता है, और जैन बन जाता है। कसाई लोग ने हिंसा का त्याग करके जैनधर्म धारण करते हैं। अमरकुमार के पिता तथा भाई भी अत्यन्त पश्चाताप करते हुए क्षमा माँगते हैं, माता अत्यन्त प्रसन्न होती है। अमरकुमार की अमर-कहानी तथा नमस्कार मंत्र का प्रभाव देखकर सर्वत्र जय-जय की ध्वनि गूँजने लगती है।

अन्त में असार संसार से विरक्त होकर अमरकुमार अपने आत्महित का मार्ग प्रशस्त करने हेतु ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर साधुओं का संग करने हेतु निकल पड़ते हैं। तथा सभी पछताते रह जाते हैं।)

(पट्टाक्षेप)

वस्तु जातमिदं मूढ़ प्रतिक्षणविनश्वरम्।
जानन्नपि न जानासि ग्रह: कोऽप्यमनौषध:।।७।।

हे मूढ़ प्राणी! यह प्रत्यक्ष अनुभव होता है कि इस संसार में जो वस्तुओं का समूह है सो पर्यायों से क्षण-क्षण में नाश होने वाला है, इस बात को जानकर भी तू अनजान हो रहा है, यह तेरा क्या आग्रह है (हठ है)? क्या तुझ पर कोई पिशाच चढ़ गया है, जिसकी औषधि ही नहीं है।

क्षणिकत्वं वदन्त्यार्या घटीघातेन भूभृताम्।
क्रियतामात्मन: श्रेयो गतेयं नागमिष्यति।।८।।

इस लोक में राजाओं के यहाँ जो घड़ी का घंटा बजता है और शब्द करता है सो सबके क्षणिकपने को प्रगट करता है अर्थात् जगत को मानो पुकार पुकार कर कहता है कि हे जगत के जीवो! जो कोई अपना कल्याण करना चाहते हो सो शीघ्र कर लो, नहीं तो पछताओगे, क्योंकि यह जो घड़ी बीत गई है, वह किसी प्रकार भी पुनर्वार लौटकर नहीं आयेगी।

– ज्ञानार्णव : आचार्य शुभचन्द्र

१५

जीवन का ध्येय

एक समय की बात है कि एक साथ कुछ मित्र आपस में चर्चा कर रहे थे, चर्चा करते-करते वे सभी अपने-अपने जीवन का ध्येय (उद्देश्य) बताने लगे। उनमें से......

एक मित्र बोला— कि भाई ! मैं तो ऊँची से ऊँची पढ़ाई करके अमेरिका जाऊँगा —यही मेरे जीवन का ध्येय है।

दूसरे मित्र ने कहा— मेरा ध्येय तो भारत में ही रहकर स्वदेश की सेवा करने का है। परदेश में जाने का मेरा कोई विचार नहीं है।

तीसरे मित्र ने कहा— इस समय देश की रक्षा करने की एक सबसे बड़ी समस्या हमारे समाने खड़ी है, अत: मैं तो सेना में भर्ती होकर दुश्मन देशों से अपने देश की रक्षा करूँगा और दुश्मनों को यह बता दूँगा कि अभी भी भारत में वीर जवान मौजूद हैं। बस, मेरे जीवन का तो एक मात्र यही ध्येय है।

चौथे मित्र ने कहा— मेरा ध्येय तो व्यापार में एक करोड़ रुपया कमाने का है।

पांचवे मित्र ने कहा— भाई! मेरा ध्येय न तो धन इकट्ठा

करने का है और न ही परदेश जाने का है। मेरा ध्येय तो छोटे-छोटे बालकों को अच्छी-अच्छी ज्ञानवर्धक बातें सिखाने का है; क्योंकि यदि वे संस्कारी बालक हुए तो अपना हित-अहित स्वयं सोच सकते हैं।

छटवें मित्र ने कहा— मुझे तो परभव की चिंता है, इसलिए मैं तो अपना सम्पूर्ण समय पूजा पाठ, परोपकार, दया, दान आदि कार्यों में लगाऊँगा, जिससे मुझे अगले भव में अवश्य ही स्वर्गादि की प्राप्ति होगी।

सातवें मित्र ने कहा— परभव की किसे खबर है, परभव की चिंता करके इस भव के सुखों को छोड़ना —यह कोई समझदारी नहीं है। अरे, अभी मजे-मौज से जीना और जिंदगी में प्राप्त भोगों को भोगना मेरा तो यही ध्येय है।

आठवें मित्र ने कहा— अपने को तो जीवन में शांति से रहना और संतो की सेवा करना, यही एक मात्र मेरे जीवन का ध्येय है।

नवमें मित्र ने कहा— दुनियाँ में आज भी बहुत से जीव दुखी हैं, उन दुखी जीवों की सेवा में ही मैं अपना सारा जीवन लगा देना चाहता हूँ। बस मेरी तो यही भावना है।

दसवें मित्र ने कहा— भाई! मेरी तो एक ही भावना है कि मैं इस अमूल्य मनुष्य जीवन में अपने आत्मा को प्राप्त करूँ और आत्मा की शुद्धता को प्राप्त करके सच्ची शांति प्राप्त करूँ और इन भव दुखों से हमेशा के लिए छूट जाऊँ —यही मेरे जीवन का ध्येय है।

दसवें मित्र की उत्तम बात सभी मित्रों को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व हितकर लगी, सभी ने उत्साह से स्वीकार कर ली। वास्तव में सभी जीवों को सत्-समागम और जैनधर्म का ऐसा उत्तम योग्य प्राप्त कर अपनी आत्मा की शांति का अनुभव और मोक्ष की साधना करना चाहिए।

सभी के जीवन का एक मात्र यही ध्येय होना चाहिए।•

१६

सुखी कौन ?

एक व्यक्ति बाजार की एक सबसे बड़ी दुकान में गया और उसने उस दुकान में अनेक प्रकार की सस्ती मंहगी अनेकों वस्तुएँ देखीं तथा अंत में जाते समय बोला दुकान बहुत अच्छी है।

तब दुकानदार ने कहा कि भाई! आप कुछ खरीद तो करो।

तब वह व्यक्ति बोला— भाई! तुम्हारी दुकान बहुत अच्छी है, परन्तु मुझे तुम्हारी दुकान में उपलब्ध वस्तुओं में से किसी भी वस्तु की जरूरत नहीं है, इसलिए मैं इन्हें लेकर क्या करूँ?

दुकानदार ने कहा कि तुम दुकान की मात्र प्रशंसा करते हो, परन्तु खरीदते तो कुछ हो नहीं।

तब वह व्यक्ति बोला कि भाई! सोचो जरा सोचो, आप एक दवा की दुकान पर जाओ, उसे देखो और सभी प्रकार के बड़े से बड़े रोगों की दवाओं को देख कर प्रसन्नता व्यक्त करो और किसी भी दवाई की खरीद न करो; क्योंकि किसी प्रकार का रोग नहीं होने से तुम्हें किसी भी प्रकार की दवा लेने की जरूरत ही नहीं है।

इसी प्रकार इस जगत रूपी दुकान में जड़,चेतन समस्त पदार्थ भरे हुए हैं, सभी वस्तुएँ अपने-अपने स्वभाव में सुशोभित हैं। उनमें जिनके इच्छा रूपी रोग व्याप्त है, वे तो सुख की इच्छा से पर पदार्थों का ग्रहण करते हैं, परन्तु ज्ञानी तो कहते की मैं मेरे स्वरूप से परिपूर्ण हूँ तथा मैं मेरे स्वरूप

में तृप्त व संतुष्ट हूँ। इच्छा रूपी रोग मुझे नहीं है, फिर मैं परद्रव्य का ग्रहण किसलिए करूँ?

दवा चाहे जितनी अच्छी हो, परन्तु जिसे रोग ही नहीं है उसे उससे क्या प्रयोजन। इसीप्रकार जगत में भले ही कैसे भी पदार्थ क्यों न हों; परन्तु जिनके इच्छा ही नहीं है, उन्हें उनसे क्या प्रयोजन हो सकता है? वे तो मात्र उन्हें जानते हैं। उनका ज्ञान निरोगी है, आकुलता रहित है और ऐसे निरोगी व निराकुल ज्ञानस्वभाव में तृप्त जीव जगत के पदार्थों को जानता है, परन्तु उनमें से किसी को ग्रहण नहीं करता, जो अपने में अतृप्त होता है, वही दूसरों को प्राप्त करने की इच्छा करता है। जिसे परपदार्थों को ग्रहण करने की इच्छा है वह दुखी है तथा जो स्वरूप में तृप्त हैं, वही सुखी है।

ध्यान करना आतम का, आतमा ही राम है।
जो किया है आज तक, वह तो सभी निष्काम है।।टेक।।

सूरज चमक को देख मृग, नित दौडता जल के लिये।
किंतु जल मिलता नहीं, वहां चिलचिलाती धूप है।।
व्यर्थ परिश्रम कर रहा, क्यों कि वहाँ अज्ञान है।
ध्यान करना आतमा का, आतमा ही राम है।।१।।

इस तरह तूं भी परिश्रम, कर रहा स्वजनों के साथ।
सुख की आशा लिये है, पर दु:ख ही है उनके हाथ।।
क्या तुझे दे पायंगे, वह तो स्वयं वीरान हैं।
ध्यान करना आतमा का, आतमा ही राम है।।२।।

क्यों अरुचि लाता नहीं, विषयांध आठों याम है।
दु:ख चहुंगति में उठाने, का यही परिणाम है।।
छोड़ रागादिक सभी से, 'प्रेम' सच्चा काम हैं।
ध्यान करना आतमा का, आतमा ही राम है।।३।

१७

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कौन ?

शोभावती नगर में महाराजा सूरसेन राज्य करते थे, जो विद्वान भी थे। उसकी राजसभा में एक दिन एक ज्ञानसभा आयोजित की गई, किसी ने काव्य, किसी ने श्लोक सुनाये। पश्चात् एक विदेशी पंडित ने सुन्दर बोध-प्रद कथा सुनाई, जिसे सुनकर सारी सभा जैसे बीन के नाद से नाग डोलता है वैसे डोलने, झूमने लगी, सब खुश हुए। राजा तुरन्त गहरे विचारों में मग्न हो गया और प्रश्न किया कि आप सब संयोग और संयोगी भाव की बातें लोगों के रंजनार्थ कर रहे हैं, किन्तु सच्चा सेवक किसे कहा जाय? अनुभव प्रमाण से कहिये।

सभाजनों ने अपनी बुद्धि अनुसार वर्णन किया, किन्तु राजा को संतोष नहीं हुआ। राजा ने १५ दिन की मर्यादा देकर कहा कि विचार करके जबाब देना। १५ वें दिन एक अति वृद्ध पंडित सभा में राजा के सन्मुख आये, दिन होने पर भी उनके हाथ में जगमागाता हुआ लालटेन (दीपक) था। पण्डित जी ने राजा से प्रश्न किया कि इस लालटेन में सबसे मुख्य चीज क्या है?

महाराज— प्रकाश (ज्योति)

पण्डितजी— कैसे?

राजा— अंधेरे में प्रकाश करना इसी का काम है, कारण कि यदि, इसमें ज्योति (प्रकाश) न हो तो लालटेन क्या काम की? अतः इस ज्योति को मैं मुख्य और महत्व की वस्तु समझता हूँ। पंडितजी ने कहा, क्षमा कीजिये महाराज! आपका कहना बराबर नहीं है। इसमें ज्योति के सिवा दूसरी एक मुख्य वस्तु है।

राजा ने कहा— तो वह चीज रुई की बत्ती होगी, वह न हो तो ज्योति कहा से प्रगट हो सकती है? तब वृद्ध ने नकारात्मक मस्तक हिलाया, पश्चात् राजा ने लालटेन के सब अंग-उपांग सूचित किये, फिर भी वृद्ध ने इन्कार ही किया। राजा ने निवेदन किया कि मेरी समझ

में नहीं आता, आप ही फरमाइये कि मूलभूत प्रयोजनभूत चीज किसे समझना चाहिये?

पण्डित– राजन्! तेल ही मूलभूत और मुख्य है, फिर भी वह अपनी विशेषता का जरा भी विज्ञापन न करते हुए ढिंढोरा न पीटकर, गुप्त रहकर शान्ति से अपना कार्य पूर्णतया करता ही रहता है, भले ही लोग उसे कुछ भी गिनती में न लें। फिर भी स्वयं प्रकाशमय होकर अंधकार को दूर रखता है। बस, वही गुण और स्वभाव सच्चे सेवक का भी है। कारण कि वह अपने प्रशस्त कार्य का जरा भी विज्ञापन नहीं करता कि मैंने ऐसा किया, मैं मुख्य हूँ बस वह तो गुपचुप अपना कर्तव्य पूर्ण करने में ही सच्चा संतोषमय रहता है।

अतः हे राजन् एवं हे प्रजाजनो! न तो अपनी आवश्यकताओं के लिये किसी पर की आशा रखना चाहिये, और न ही हाय! हाय! करना चाहिये। तेल का दृष्टांत याद रखिये बस अपने कर्तव्य मात्र की असली बात सुनकर राजा और सब प्रजाजन खुश हुए और राजा ने यह निवेदन किया कि हम आज से ही ऐसी अनुभूति में रहेंगे कि हम हमारी कर्तव्य मात्र में मशगूल हैं तो किसी से अपना दिखावा करने की जरूरत नहीं है? मालिक बनना ही दुःख है, सेवक बनना सुख है! अपने को संतोष है तो दूसरों को कर्तृत्व बताना, मानना, मनाना कराने का जो कष्ट है, वह न होगा, सुख ही होगा। तब राजा अपूर्व प्रेम से वृद्ध पण्डितजी के गले मिले, और उनकी प्रशंसा की।

"धन्य! पण्डितजी.......एक बालक भी समझ सके ऐसी सरल भाषा में आपने ऐसी स्पष्ट बात समझा दी और सबके समक्ष आपने अपनी अनुभूतिपूर्ण बात प्रत्यक्ष रीति से सिद्ध करके दिखाई, आपके समाधान द्वारा मैं बहुत खुशी हुआ हूँ आप इस ज्ञानसभा के ही नहीं, किन्तु सारे समाज के रत्न हो! फिर भी मैं एक विशेष बात नम्रता से कहूगा कि–

तेल और प्रकाश तो पुद्गल की अवस्था है जो उसके स्वतंत्र कारणकार्यवश होते ही हैं, किन्तु उसे जाननेवाला चेतन, भेदविज्ञानी जीव न हो तो उसे कौन जानता है? अतः सब को जाननहार विवेकवान जीव (आत्मा) ही मुख्य है। तब सारी सभा ने एक साथ राजा के प्रति परम हर्ष प्रगट किया।

प्रेरक प्रसंग

१. सीता-वैराग्य

राजा रामचन्द्र ने लोकापवाद के भय से सीता को त्याग दिया, पश्चात् सीता के लव और कुश दोनों पुत्रों ने बड़े होकर लड़ाई में राम-लक्ष्मण को हरा दिया....परस्पर परिचय होने पर सीताजी को फिर से अयोध्या ले जोने की बात हुई, सीताजी के शील संबंधी लोगों का सन्देह दूर करने के लिये तथा लोगों में

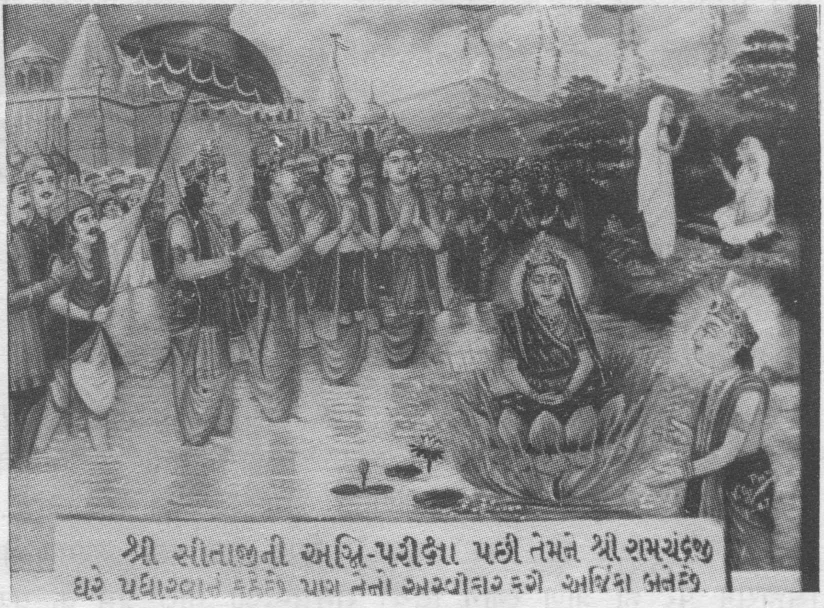

उनके शील की प्रसिद्धि करने के लिये रामचन्द्रजी ने सीताजी की अग्नि परीक्षा आयोजित की। योजना के अनुसार बड़ा अग्निकुण्ड तैयार हुआ और पंचपरमेष्ठी भगवन्तों का स्मरण कर इस दहकते हुए अग्निकुण्ड में सीताजी कूद पड़ी, सब जगह हाहाकार होने लगा....।

एक तरफ यहाँ अग्नि की झल-झलाती ज्योति प्रकट हुई है तो दूसरी ओर एक महामुनिराज को केवलज्ञान की झल-झलाती ज्योति प्रगट होती है, और वहाँ उत्सव मनाने के लिये जा रहे

देवों ने सीताजी की अग्निपरीक्षा का दृश्य देखा.... और अपनी दैवीशक्ति द्वारा अग्नि के स्थान पर जल सरोवर बना दिया, बीच में कमल की रचना में सीताजी सुशोभित होती थीं.....देवों ने सीताजी के शील की प्रशंसा की और उनकी शील महिमा को जगत में प्रसिद्ध किया।

अब राजा रामचन्द्र सीता को कहते हैं, हे देवी! अयोध्या चलो.....। परन्तु धर्मात्मा सीता वैराग्य पूर्वक कहती हैं कि "अब मुझे संसार नहीं चाहिये" अब तो मैं दीक्षा लेकर, इस असार संसार को छोड़कर आत्म-कल्याण करूँगी। ऐसा कह कर राम को और लव-कुश जैसे पुत्रों को भी छोड़कर केशों का लोंचकर पृथ्वीमति आर्यिकाजी के संघ में चली जाती हैं। सीताजी के वैराग्य के अवसर पर रामचन्द्रजी मूर्छित हो जाते हैं।

—यह कथा हमें शील और वैराग्य का सन्देश देती है।

२. लव-कुश वैराग्य

एक दिन इन्द्रसभा में राम और लक्ष्मण के प्रेम की प्रशंसा हुई, देव उनकी परीक्षा करने आए...उन्होंने बनावटी वातावरण बनाकर लक्ष्मण से कहा कि राजा रामचन्द्र का स्वर्गवास हो गया....यह सुनते ही "हा....राम!" ऐसा कह कर लक्ष्मणजी ने सिंहासन पर ही प्राण त्याग दिये। रामचन्द्रजी तीव्र प्रेम के कारण लक्ष्मण के मृत शरीर को कन्धे पर उठाकर चारों ओर फिरते रहे।

इधर लव और कुश चाचा की मृत्यु और पिता की ऐसी अवस्था देखकर संसार से विरक्त हो जाते हैं।.....और रामचन्द्रजी के पास जाकर हाथ जोड़कर कहते हैं कि—

हे पिताजी! "इस संसार की असार स्थिति देखकर हमारा मन संसार से विरक्त हो गया है...अब हम दीक्षा लेकर मुनिधर्म पालन कर आत्मा की साधना पूर्वक केवलज्ञान प्राप्त करेंगे......अत: आप हमें मुनि बनने की आज्ञा दीजिए।

अन्तर में जो सिद्ध का मार्ग दिखाई दिया है, उसी मार्ग पर अब हम विचरेंगे'' —ऐसा कह कर अमृतसागर मुनिराज के पास जाकर दोनों भाईयों ने दीक्षा ले ली। वे चैतन्य में लीन होकर, केवलज्ञान प्राप्त कर पावागढ़ सिद्धक्षेत्र से मुक्त हो गए।

—इसी पावागढ़ सिद्धक्षेत्र से और भी पांच करोड़ मुनिवरों ने मुक्ति प्राप्त की है।

३. जीवन ही बदल गया

आज जैनधर्म की परमभक्त रानी चेलना उदास थी,.....बहुत समझाने पर भी राजा श्रेणिक को जैनधर्म में श्रद्धा आती ही नहीं थी।

परम जैन सन्त यशोधर मुनिराज जंगल में ध्यानस्थ थे, राजा श्रेणिक ने उन्हें द्वेषबुद्धि से देखा और 'यह तो दंभी है'— इसप्रकार मुनि के प्रति द्वेष से उनके गले में मृत सांप डाल दिया। राजभवन में आकर रानी चेलना को जब यह बात बतलाई। तब यह सुनते ही रानी चेलना का भक्तहृदय आकुल-व्याकुल हो गया। उदास होकर तत्काल मुनिराज का उपसर्ग दूर करने के लिये वह तत्पर हुई। तब राजा श्रेणिक कहने लगे। अरे तेरा गुरु तो कभी का सांप दूर करके अन्यत्र चला गया होगा।

चेलना ने कहा नहीं राजन् — आत्मसाधना में लीन मेरे गुरु को, वीतरागी जैनसन्तों को, शरीर का ऐसा ममत्व नहीं होता। वह ऐसे के ऐसे ही बैठे होंगे। अगर आपको प्रत्यक्ष देखना हो तो मेरे साथ चलिये।

राजा श्रेणिक जब रानी चेलना के साथ वहाँ जाकर यशोधर मुनिराज को वैसे के वैसे ही समाधि में बैठे देखते हैं तो वे स्तब्ध

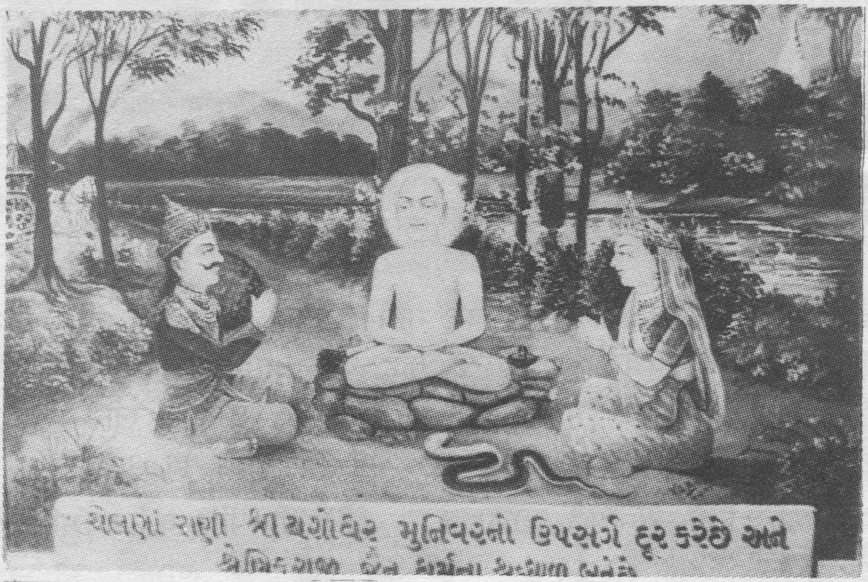

रह जाते हैं —उनका द्वेष पिघल जाता है, ह्रदय गद्-गद् हो जाते हैं। रानी मुनिराज की भक्ति करते हए सावधानी पूर्वक साँप को दूर करती है।

तभी ध्यान पूर्ण होने पर मुनिराज राजा और रानी दोनों को धर्मवृद्धि का एक-सा आशीर्वाद देते हैं। मुनिराज की ऐसी महान समता देखकर राजा श्रेणिक चकित हो जाते हैं। धन्य हैं ऐसे जैन मुनिराज धन्य हैं ऐसा वीतरागी जैनधर्म! ऐसे बहुमान पूर्वक अपने अपराध की क्षमा मांगी और राजा ने जैनधर्म अंगीकार किया, सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, उनका तो जीवन ही बदल गया।

उस समय चेलना रानी की प्रसन्नता का क्या कहना।

४. पात्र जीव

मुनिराज के सम्बोधन से वैराग्य प्राप्त सिंह की आंखों से आंसुओं की धारा बहती है और वह सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।

यह सिंह कौन है?

यह तो है भगवान महावीर का जीव, इसके १० भव पूर्व का यह प्रसंग है। विदेहक्षेत्रस्थ तीर्थंकर की वाणी से मुनियों ने जाना

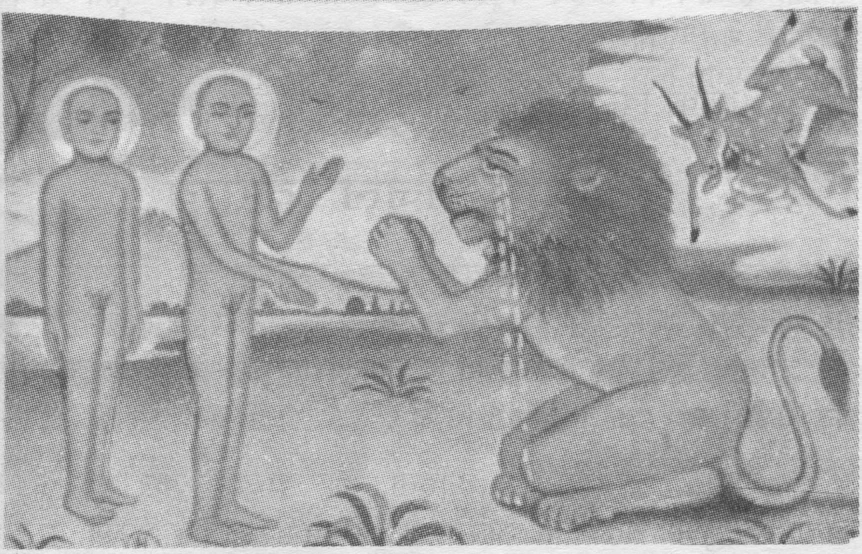

कि सिंह का यह जीव १० वें भव में तीर्थंकर होगा।

जिस जंगल में वह वनराज एक हिरन को फाड़कर खा रहा था उसी जंगल में, ऊपर से दो मुनिराज उतरे....और सिंह के सामने आकर खड़े हो गए। सिंह तो आश्चर्य से देखता ही रह गया। मुनिओं ने उसे सम्बोधित करके कहा—

अरे सिंह! अरे आत्मा! तुझे यह शोभा नहीं देता, १० वें भव में तो तू त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर होनेवाला है। अरे! भविष्य में जगत को वीतरागी अहिंसा का सन्देश देने वाला तू आज ऐसी हिंसा में पड़ा है। छोड़ रे छोड़! यह हिंसा के भाव.....जाग....जाग!

यह सुनते ही सिंह को पूर्वभव का ज्ञान होता है, पश्चाताप से मिथ्यात्व पिघलकर आँसुओं के रूप में बाहर निकल जाता है, और वह सम्यग्दर्शन् प्राप्त करता है। बहुमान और भक्ति से मुनिओं की प्रदक्षिणा करता है....और बाद में अनुक्रम से आत्मसाधना में आगे बढ़कर तीर्थंकर महावीर होता है।

अहा! सिंह की सम्यक्त्व प्राप्ति का यह प्रसंग हमें यह शिक्षा देता है कि जब एक क्रूर पशु भी सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है तब फिर हम मनुष्य होकर भी सम्यग्दर्शन रहित जीवन जियें— यह हमारे लिए शोभा की बात नहीं है।

(इसका विस्तृत वर्णन जैनधर्म की कहानियाँ भाग-९ में देखें)

५. नेमि-राजुल वैराग्य

जैसे ही नेमिकुँवर की बरात जूनागढ़ के नजदीक आ पहुँची, वैसे ही पशुओं का करुण चीत्कार सुनकर नेमिकुँवर ने रथ रोक दिया.. इस वैरागी महात्मा का हृदय पशुओं के करुण चीत्कार को कैसे सहन् कर सकता था?

जगत में वीतरागी अहिंसा का शंख फूँकने के लिये अवतरित हुआ यह सन्त अपने ही निमित्त से होते इस करुण क्रन्दन को किस तरह सहन कर सकता। उन्होंने रथ पीछे लौटा दिया....और विवाह न करने का निश्चय कर वे तो गिरनार धाम को चले गए एवं मुनि होकर आत्मसाधना में तत्पर हो गए।

इस ओर नेमिस्वामी द्वारा रथ के लौटाये जाने का एवं उनके वैराग्य का समाचार सुनकर राजमती ने कितना आक्रन्दन किया होगा? ....ना...ना! वे तो राजमती थीं, न तो उन्होंने आक्रन्दन किया और न ही माता-पिता के अनेक बार समझाने पर भी अन्यत्र विवाह करने का विचार किया,—उन्होंने तो वैराग्यमार्ग अंगीकार किया।

"जिस मार्ग से स्वामी नेमिनाथ गए, वही मेरा मार्ग!" ऐसे दृढ़ निश्चय के साथ वह भी चली गईं गिरनार धाम की ओर अपनी आत्मसाधना करने के लिए।

यह नेमि और राजुल का जीवन आज भी जगत को आदर्श वैराग्य जीवन का सन्देश दे रहा है।

६. मैं अपना सिद्धपद लूंगा.....

सिद्ध भगवान के परमसुख की बात सुनते ही जिज्ञासु को सिद्धपद की भावना जागृत हुई...... वह सिद्ध भगवान की ओर देखकर उन्हें बुलाता है कि हे सिद्ध भगवन्त! यहाँ पधारो! परन्तु सिद्ध भगवान तो ऊपर सिद्धालय में विराजमान हैं....वे नीचे आयेंगे क्या? नहीं। और सिद्ध भगवान को देखे बिना जिज्ञासु को समाधान नहीं हो सकता।

अन्त में किन्हीं अनुभवी धर्मात्मा से उसकी भेंट हो गई। उन्होंने कहा कि तू अपने में देख तो तुझे सिद्धपद दिखायी देगा। अपने ज्ञान दर्पण को स्वच्छ करके उसमें देख तो तुझे सिद्ध भगवान अपने में दिखायी देंगे। जब उसने अंतर्मुख होकर सम्यग्ज्ञान रूपी दर्पण में देखा तो उसे अपने में सिद्ध भगवान दिखायी दिये, अपना स्वरूप ही सिद्ध समान देखकर धर्मी जीव को परम प्रसन्नता हुई—परम आनन्द हुआ।

इसका तात्पर्य यह है कि हे जीव! तेरा सिद्धपद तेरे ही पास है, बाह्य में नहीं है। इसलिये अपने पद को अपने में ही ढूंढ़.....अंतर्मुख हो।

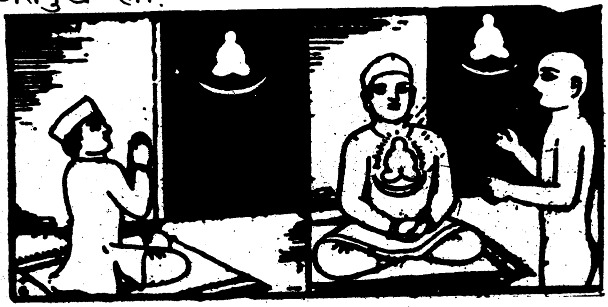

जिनोपदेश पाकर वीर-मुमुक्षु भावज्ञान के दृढ़ प्रहार द्वारा मोह का नाश करता है

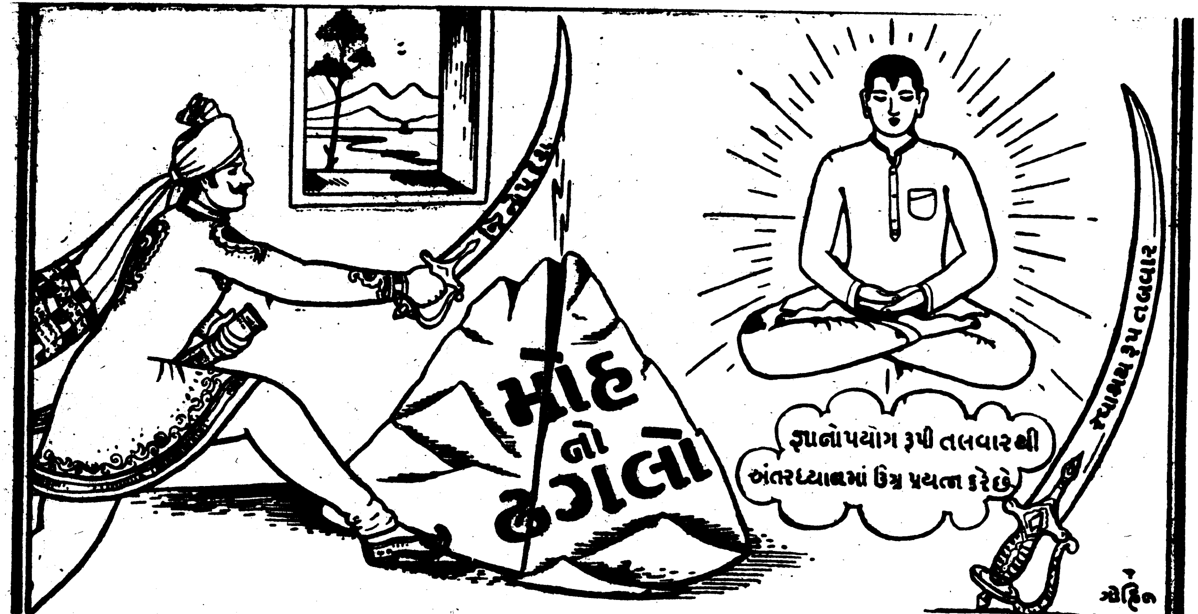

अरे, बहुत दु:खों से भरपूर इस संसार में, सुख का मार्ग दिखाने वाली जिनवाणी महाभाग्य से मुझे मिली, वीतरागी-जिनोपदेशरूपी यह तीक्ष्ण तलवार पाकर, अब मुझे भावज्ञान के तीव्र अभ्यास के द्वारा मोह को शीघ्र ही मार देना योग्य है। इस प्रकार दृढ़ निश्चय के द्वारा शूरवीर होकर मुमुक्षु अन्तर्मुख उपयोग के द्वारा आत्मअनुभूति करके मोह को नष्ट कर देता है, और आनन्दमय मोक्षमार्ग प्राप्त करता है। आईये, आप भी शूरवीर बन जाइये, जिनवाणीरूप वीतरागी तलवार आपके हाथ में ही है।

हमारे प्रकाशन

१.	चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी) [५२८ पृष्ठीय प्रथमानुयोग का अद्वितीय सचित्र ग्रंथ]	५०/-
२.	चौबीस तीर्थंकर महापुराण (गुजराती) [४८३ पृष्ठीय प्रथमानुयोग का अद्वितीय सचित्र ग्रंथ]	४०/-
३.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १)	७/-
४.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग २)	७/-
५.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ३) (उक्त तीनों भागों में छोटी-छोटी कहानियों का अनुपम संग्रह है।)	७/-
६.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ४) महासती अंजना	७/-
७.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ५) हनुमान चरित्र	७/-
८.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ६) (अकलंक-निकलंक चरित्र)	७/-
९.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ७) (अनुबद्धकेवली श्री जम्बूस्वामी)	१२/-
१०.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ८) (श्रावक की धर्मसाधना)	७/-
११.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ९) (तीर्थंकर भगवान महावीर)	१०/-
१२.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १०) कहानी संग्रह	७/-
१३.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ११) कहानी संग्रह	७/-
१४.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १२) कहानी संग्रह	७/-
१५.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १३) कहानी संग्रह	७/-
१६.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १४) कहानी संग्रह	७/-
१७.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १५) कहानी संग्रह	७/-
१८.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १६) नाटक संग्रह	७/-
१९.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १७) कहानी संग्रह	७/-
२०.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १८) क. व ना.संग्रह	७/-
२१.	अनुपम संकलन (लघु जिनवाणी संग्रह)	६/-
२२.	पाहुड़-दोहा, भव्यामृत-शतक व आत्मसाधना सूत्र	५/-
२३.	विराग सरिता (श्रीमद्जी की सूक्तियों का संकलन)	५/-
२४.	लघुतत्त्वस्फोट (गुजराती)	
२५.	भक्तामर प्रवचन (गुजराती)	
२६.	अपराध क्षणभर का (कॉमिक्स)	१०/-

हमारे प्रेरणा स्रोत : ब्र. हरिलाल अमृतलाल मेहता

Serving JinShasan
193411
gyanmandir@kobatirth.org

जन्म
वीर संवत् 2451
पौष सुदी पूनम
जैतपुर (मोरबी)

देहविलय
8 दिसम्बर, 1987
पौष वदी3, सोनगढ़

सत्समागम
वीर संवत् 2471
(पूज्य गुरुदेव श्री से)
राजकोट

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा
वीर संवत् 2473
फागण सुदी 1
(उम्र 23 वर्ष)

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के अंतेवासी शिष्य, शूरवीर साधक, सिद्धहस्त, आध्यात्मिक, साहित्यकार **ब्रह्मचारी हरिलाल जैन** की 19 वर्ष में ही उत्कृष्ट लेखन प्रतिभा को देखकर वे सोनगढ़ से निकलने वाले आध्यात्मिक मासिक **आत्मधर्म** (गुजराती व हिन्दी) के सम्पादक बना दिये गये, जिसे उन्होंने 32 वर्ष तक अविरत संभाला। पूज्य स्वामीजी स्वयं अनेक बार उनकी प्रशंसा मुक्त कण्ठ से इस प्रकार करते थे-

''मैं जो भाव कहता हूँ, उसे बराबर ग्रहण करके लिखते हैं, हिन्दुस्तान में दीपक लेकर ढूँढने जावें तो भी ऐसा लिखने वाला नहीं मिलेगा... ।''

आपने अपने जीवन में करीब 150 पुस्तकों का लेखन/सम्पादन किया है। आपने बच्चों के लिए **जैन बालपोथी** के जो दो भाग लिखे हैं, वे लाखों की संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं। अपने समग्र जीवन की अनुपम कृति **चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों का महापुराण**-इसे आपने 80 पुराणों एवं 60 ग्रन्थों का आधार लेकर बनाया है। आपकी रचनाओं में प्रमुखतः आत्म-प्रसिद्धि, भगवती आराधना, आत्म वैभव, नय प्रज्ञापन, वीतराग-विज्ञान (छहढ़ाला प्रवचन, भाग 1 से 6), सम्यग्दर्शन (भाग 1 से 8), अध्यात्म-संदेश, भक्तामर स्तोत्र प्रवचन, अनुभव-प्रकाश प्रवचन, ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव, श्रावकधर्मप्रकाश, मुक्ति का मार्ग, मूल में भूल, अकलंक-निकलंक (नाटक), मंगल तीर्थयात्रा, भगवान ऋषभदेव, भगवान पार्श्वनाथ, भगवान हनुमान, दर्शनकथा, महासती अंजना आदि हैं।

2500वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर किये कार्यों के उपलक्ष्य में, जैन बालपोथी एवं आत्मधर्म सम्पादन इत्यादि कार्यों पर अनके बार आपको स्वर्ण-चन्द्रिकाओं द्वारा सम्मानित किया गया है।

जीवन के अन्तिम समय में आत्म-स्वरूप का घोलन करते हुए समाधि पूर्वक **''मैं ज्ञायक हूँ...मैं ज्ञायक हूँ''** की धुन बोलते हुए इस भव्यात्मा का देह विलय हुआ-यह उनकी अन्तिम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता थी।

मुद्रण व्यवस्था : जैन कम्प्यूटर्स, जयपुर मो. 09414717816 फैक्स : 0141-2709865